सन्मति-तीर्थ के प्रकाशन

१)	An Introduction to Ardhamagadhi	Dr. A. M. Ghatage	१९९३
२)	जिनधर्म व जैनधर्म	डॉ. शरद शहा	१९९३
३)	मनुष्यत्वाची दुर्लभता	संपादन : डॉ. नलिनी जोशी	२००१
४)	ज्ञानपंचमी कथा	"	२००१
५)	बप्पभट्टिसूरिकहा	"	२००२
६)	पाइय-परिच्छेय-संगहो	"	२००२
७)	Shrimad Rajchandra	Dr. U. K. Pungaliya	२००३
८)	जिणवयणाइं	संपादन डॉ. नलिनी जोशी	२००३
९)	उत्तराध्ययन-सार	"	२००४
१०)	अट्ठपाहुड-सार	"	२००४
११)	दशवैकालिक-सार	"	२००४
१२)	प्राकृत साहित्याचा संक्षिप्त इतिहास	"	२००५
१३)	तत्त्वार्थ - पाठ्यक्रम १,२	"	२००६
१४)	आचारांग-पाठ्यक्रम १,२	"	२००७
१५)	जैनॉलॉजी प्रवेश (प्रथमा-पंचमी)	"	२००३-२००७
१६)	सूत्रकृतांग-पाठ्यक्रम १,२	"	२००८-२००९
१७)	Collected Research Papers in Prakrit and Jainology	"	२००८
१८)	अनोळखी गोष्टी १,२,३,४,५,६	"	२००७-२०११
१९)	A Brief Survey of Jaina Prakrit & Sanskrit Literature	"	२००९
२०)	जैनॉलॉजी-परिचय (१, २, ३, ४)	"	२००९-२०१२
२१)	स्थानांग-पाठ्यक्रम	"	२०१०
२२)	समवायांग-पाठ्यक्रम	"	२०११
२३)	An Outline of Prakrit Literature	"	२०११
२४)	जैन तत्त्वज्ञान	"	२०११
२५)	जैनविद्येचे विविध आयाम	"	२०११
२६)	जैन-तत्त्व-प्रकाश-अध्ययन-पाठ्यक्रम (I, II)	"	२०११
२७)	सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका (कुल ११)	"	२००२-२०१२

पण्णा समिक्खए धम्मं

सप्टेंबर २०१२ वर्ष : ११

सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका

सूत्रकृतांग-चिंतन-विशेषांक

जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था

सन्मति-तीर्थ प्रकाशन
फिरोदिया होस्टेल
८४४, शिवाजीनगर, बी. एम्.सी.सी.रोड, पुणे ४११ ००४.
फोन नं. : २५६७१०८८

सन्मति-तीर्थ : नवे शैक्षणिक वर्ष

गेली २५ वर्षे जैनविद्येचे अनेकविध
आयाम शैक्षणिक कक्षेत आणणारी एकमेव संस्था
२५ जूनपासून प्राकृत व जैनॉलॉजीचे विविध वर्ग सुरू झालेले आहेत.

प्रौढांसाठी :
१) प्राकृत - ५ वर्षे क्रमाने
२) जैनॉलॉजी - ५ वर्षे क्रमाने

प्रगत अभ्यासक्रम :
१) जैन-तत्त्वप्रकाश
२) तत्त्वार्थसूत्र
३) पातंजल-योग-दर्शन
४) श्रीमद्-भगवद्-गीता

आगम अभ्यासवर्ग :
१) आचारांग
२) सूत्रकृतांग
३) स्थानांग
४) समवायांग
५) भगवती

लहान मुलांसाठी : जैनॉलॉजी प्रथमा ते पंचमी

नवीन वस्तुनिष्ठ अभ्यासक्रम : जैनॉलॉजी परिचय १ ते ४

अत्यल्प फी ! कुशल शिक्षकवर्ग !! सोयीचे ठिकाण !!!

* जैन अध्यासनातर्फे आपल्या भागात ४ व्याख्यानांची माला आयोजित करण्यासाठी संपर्क : ९४२१००१६१३
* सन्मति च्या क्लाससाठी संपर्क : २५६७१०८८ (सोम. ते शुक्र. १२ ते ४)
* आपल्या सोसायटीतील ६ ते १० वयोगटातील जैन बालकांसाठी स्वत: वर्ग चालू करू शकतात.
* २०११-२०१२ च्या सन्मति-तीर्थ च्या परीक्षेत सुयश मिळवणाऱ्या ८०० विद्यार्थ्यांचे हार्दिक अभिनंदन !

या, चौकशी करा, सामील व्हा !!

शिक्षकों के लिए सूचनाएँ

निम्नलिखित पाठ्यक्रमों की परीक्षा के स्वरूप में शैक्षणिक वर्ष जून २०१२ से परिवर्तन लाया गया है ।

जैनविद्या-प्रगत-पाठ्यक्रम

- जैनतत्त्वप्रकाश (I, II)
- तत्त्वार्थसूत्र (I, II)
- पातंजल-योग-दर्शन
- श्रीमद्-भगवद्-गीता (I, II, III)

आगम-सीरिज

- आचारांग (I, II)
- सूत्रकृतांग (I, II)
- स्थानांग
- समवायांग
- भगवती (I, II)

वार्षिक परीक्षा पिछले कई सालों से ६० + ४० इस पॅटर्न से ली जा रही थी । जून २०१२ साल से इस पॅटर्न में बदलाव लाया है । उपरोक्त अभ्यासक्रमों पर आधारित जो प्रश्नसंच दिये हैं, उसके जवाब फुलस्केप कापी में विद्यार्थी लिखें । १५-२० गुणों के प्रश्नों के जवाब नहीं लिखने हैं । विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे पूरे सालभर थोडा-थोडा प्रश्नसंच लिखकर, फेब्रुवारी के अंतिम सप्ताह तक सन्मति-तीर्थ के कार्यालय में कापियाँ पहुँचाए । उचित जाँच के बाद सिर्फ श्रेणियाँ (Grades) दी जायेगी । जो विद्यार्थी कापियाँ वापस चाहते हैं वे संस्था में आकर अथवा शिक्षिका के मार्फत वापिस ले जा सकते हैं । यह कापी विद्यार्थी के मूल हस्ताक्षर में चाहिए । किसी भी प्रकार झेरॉक्स कापी नहीं चलेगी । कापी में किसी भी तरह की सजावट अपेक्षित नहीं है ।

सप्टेंबर २०१२ वर्ष : ११

सन्मति–तीर्थ
वार्षिक पत्रिका

सूत्रकृतांग (१)–चिंतन–विशेषांक

सन्मति–तीर्थ
जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था

सन्मति–तीर्थ प्रकाशन
फिरोदिया होस्टेल
८४४, शिवाजीनगर, बी.एम्.सी.सी. रोड, पुणे ४११ ००४
फोन नं : २५६७१०८८

सन्मति–तीर्थ

जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था
रजिस्ट्रेशन क्र. महाराष्ट्र- /३१८६/८७ पुणे, दि. १३ अप्रैल १९८६
फिरोदिया होस्टेल, ८४४, शिवाजीनगर, बी.एम्.सी.सी. रोड,
पुणे ४११ ००४.
फोन नं. : २५६७१०८८

सन्मति–तीर्थ वार्षिक पत्रिका २०१२ वर्ष : ११

मुख्य संपादक	:	**डॉ. नलिनी जोशी**
सहसंपादक	:	डॉ. कौमुदी बलदोटा
		डॉ. अनीता बोथरा
प्रकाशक	:	सन्मति–तीर्थ, पुणे- ४
सर्वाधिकार	:	सुरक्षित
आवृत्ति	:	प्रतियाँ ५००
प्रकाशन	:	सप्टेंबर २०१२
मूल्य	:	रु. ५०/-
अक्षर संयोजन	:	श्री. अजय जोशी
मुद्रक	:	कल्याणी कार्पोरेशन, १४६४, सदाशिव पेठ, पुणे - ४११०३०, फोन : २४४८६०८०

सम्पादकीय

अभ्यासक मिलते गये और कारवाँ बन गया ! सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका का यह ग्यारहवाँ अंक प्रकाशित करते हुए हमें अतीव गौरव की अनुभूति हो रही है । विद्यार्थियों से पूरे सालभर अर्धमागधी आगम का अध्ययन करवाकर आखिर हम उसपर आधारित एकदिवसीय चर्चासत्र का आयोजन करते हैं । इस साल सूत्रकृतांग ग्रन्थ के प्रथम श्रुतस्कन्ध पर आधारित विद्यार्थियों ने लिखे हुए लगभग ७० लघुशोधलेखों का वाचन इस चर्चासत्र में हुआ । कुछ सम्पादकीय संस्कारों के साथ इनमें से चयनित करके, विशेष उल्लेखनीय निबन्धोंपर आधारित सूत्रकृतांग (१) मूलभूत चिन्तन विशेषांक हम प्रस्तुत कर रहे हैं । समाज के सभी जिज्ञासु एवं जैनविद्या के विद्यार्थी इस पत्रिका का खूब आनन्द उठायेंगे ।

पिछले पाँच सालों से पुणे विद्यापीठ में स्थित जैन अध्यासन और सन्मति-तीर्थ के संयुक्त प्रावधान में नये नये उपक्रमों का आयोजन हो रहा है । २० ऑगस्ट २०११ को पुणे विद्यापीठ में आयोजित वक्तृत्वस्पर्धा का वृतान्त, इस विशेषांक में अंकित किया है । स्पर्धा का विषय था - 'गर्व से कहो, हम जैन हैं ।' जैन अध्यासन के द्वारा आयोजित भक्तामरस्तोत्र-अध्ययन-उपक्रम का भी जिक्र इस पत्रिका में किया है । फिरोदिया ऑडिटोरियम में आयोजित व्याख्यान का सारांश वाचक अवश्य पढें । प्रख्यात विचारवंत डॉ. सदानंद मोरेजी ने भ. श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की समीक्षा इस व्याख्यान में की है ।

हर साल की तरह परीक्षा-परिणाम, शिक्षक-सूचि, सन्मति-तीर्थ के पाठ्यक्रम और पृष्ठांकित कविता का समावेश भी इस पत्रिका में है । वाचकों को नम्र अनुरोध है कि अंक ध्यानपूर्वक पढें तथा अभिप्राय भी दें ।

श्रीमान् अभय फिरोदियाजी के प्रोत्साहन के कारण ही सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका नियमित रूप से निकल रही है । हम उनके ऋणी हैं ।

डॉ. नलिनी जोशी
(मानद निदेशक)
सप्टेंबर २०१२

सन्मति-तीर्थ वार्षिक-पत्रिका २०१२

अनुक्रमणिका

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्र.
१)	**सूत्रकृतांग (१) के विविध आयाम**		१
	१) प्रस्तावना		
	२) निबन्धसूचि		
	३) अन्धविषयक दृष्टान्त	*कुमुदिनी भंडारी*	
	४) सूरं मण्णइ अप्पाणं	*सुमतिलाल भंडारी*	
	५) वादविवादसंगम	*शकुंतला चोरडिया*	
	६) आदानीय (काव्य)	*आशा कांकरिया*	
	७) जलसम्बन्धी विचार	*मनीषा कुलकर्णी*	
	८) आदर्श अध्यापक	*बालचन्द मालु*	
	९) नरक : वास्तव या संकल्पना	*संगीता मुनोत*	
	१०) क्या भगवन् आप भी !	*ज्योत्स्ना मुथा*	
	११) सूत्रकृतांग का दार्शनिक विश्लेषण (श्रीमद् राजचन्द्र के अनुसार)	*हंसा नहार*	
	१२) उपसर्गपरिज्ञा में स्त्रीसंगविषयक दृष्टिकोण	*अर्जुन निर्वाण*	
	१३) पानी की एक बूँद (काव्य)	*चंदा समदडिया*	
	१४) सूत्रकृतांगातील तीन शब्दांचे मूळ अर्थ (काव्य)	*चंदा समदडिया*	
	१५) वीरत्थुई के अन्तरंग में		
	१६) समवसरण : एक परिशीलन		
	१७) सूत्रकृतांग में श्रुत-धर्म		
	१८) गुरुकुलवास एक आदर्श शिक्षा-प्रणाली		

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्र.
२)	**बहारदार वक्तृत्व स्पर्धा (वृत्तांत)**	डॉ. कौमुदी बलदोटा	५९
३)	**जैन अध्यासन: भक्तामरस्तोत्र–अध्ययन**		६२
४)	**जैनविद्या के विविध आयाम**	डॉ. नलिनी जोशी	६५
५)	**श्रीकृष्ण: एक पराक्रमी, मुत्सद्दी तत्त्वज्ञ**	डॉ. सदानंद मोरे	७४
६)	**सन्मति–तीर्थ के परीक्षा परिणाम २०१२**		७८
७)	**शिक्षक एवं अध्यापन केंद्र**		८६

●●●

सन्मति-तीर्थ

.१.

सूत्रकृतांग–अध्ययन के विविध आयाम

(१) प्रस्तावना

अर्धमागधी आगमों का शैक्षणिक स्तर पर अध्ययन – यह सन्मति–तीर्थ संस्था की विशेषता है । जैन तत्त्वज्ञान एवं प्राकृत के अध्ययन से जिनकी बौद्धिक क्षमता तराशी गयी है ऐसे लगभग ७० जिज्ञासु व्यक्ति सन्मति के इस पाठ्यक्रम का लाभ उठाते हैं । पूरे साल भर सूत्रानुसारी एवं शब्दानुसारी अध्ययन करके कक्षा में कई सम्बन्धित विषयोंपर समीक्षा एवं चर्चा भी होती रहती है । वार्षिक परीक्षा में उस चर्चा में से कोई एक विषय चुनकर हर एक विद्यार्थी को एक एक शोधपरक लघुनिबन्ध लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ।

पिछले साल आचारांग के दोनों श्रुतस्कन्धों पर आधारित मूलभूत चिन्तन विशेषांक सन्मति–तीर्थ वार्षिक पत्रिका के तौर पर सम्पादित किया गया । २०१२ का सन्मति–तीर्थ वार्षिक का विशेषांक सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध पर आधारित शोधनिबन्धों के जरिए प्रस्तुत किया है ।

आरम्भ में निबन्धलेखकों के नाम एवं उनके विषय दिये हैं । इससे मालूम होता है कि स्त्री–परिज्ञा एवं ग्रन्थ इन दो अध्ययनों पर आधारित निबन्धों की संख्या ज्यादा है । 'धर्म' और 'आदानीय' ये अध्ययन भी काफी विद्यार्थीप्रिय हैं । नरकविभक्ति अध्ययनपर आधारित परस्परविरोध दर्शानेवाले दो निबन्ध लिखे गये। एक विद्यार्थिनी ने अर्धमागधी भाषा में अध्ययन का सार देने का प्रयास किया । तीन–चार विद्यार्थियों ने कविता के माध्यम से अपने चिन्तन का अनूठा प्रस्तुतीकरण

किया है । एक विद्यार्थिनीने स्वयं भगवान महावीर को ही पत्रद्वारा आमन्त्रित किया है । चयन किये हुए निबन्धों में से खास उल्लेखनीय निबन्ध हम यहाँ सम्पादकीय संस्कार के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं।

हम चाहते हैं कि हर एक जैनी इसे पढें और इस पर गौर करें !!!

●●●

(२) सूत्रकृतांगपर आधारित लघुनिबन्धों की विषयसूचि

१) स्त्रीपरिज्ञा : एक समीक्षा — बागमार चंद्रकला

२) सूत्रकृतांग में कर्मसिद्धान्त का स्वरूप — बागमार लता

३) जलशुद्धी आणि धर्म — बागमार स्मिता

४) सूत्रकृतांगातील अंधविषयक दृष्टांत — भंडारी कुमुदिनी

५) सूरं मण्णइ अप्पाणं–एक अनोखी गाथा — भंडारी सुमतिलाल

६) सूत्रकृतांगातील षट्जीवनिकायरक्षा — भंडारी सरला

७) सूत्रकृतांग में आयुष्य और बोधि का दुर्लभत्व — भंडारी सुविता

८) 'धर्म' अध्ययनातील पंचमहाव्रते — भटेवरा उज्ज्वला दि.

९) आदानीय : एक समीक्षा — भटेवरा विमल सू.

१०) 'मार्ग' अध्ययनातील मार्गदर्शन — भटेवरा विमल वि.

११) नरक : वास्तव की संकल्पना — बोरा पुष्पा

१२) 'धर्म' अध्ययनाचे अंतरंग — बोथरा कमल

१३) स्त्रीपरिज्ञा : एक नूतन समीक्षा — छाजेड भगवानदास

१४) समवसरण — छाजेड मृणालिनी

१५) समवसरण : खऱ्या अर्थाने स्वसमय–परसमय — छाजेड रेखा

१६) आधुनिकता का अर्थ : अपनी पहचान — डॉ. मंजु चोपडा

१७) वादविवादसंगम : एक समीक्षा — चोरडिया शकुंतला

१८) 'ग्रंथ' अध्ययनातील आदर्श शिक्षक — डागलिया लता

१९) कुशील परिभाषा – गाथासमीक्षा — देसडला साधना

२०) स्त्रीपरिज्ञा आणि सद्य:स्थिती — धोका अनीता

२१) स्त्रीपरिज्ञा : एक समीक्षा — धुमावत प्रेमा

२२) आदानीय अध्ययन : प्राकृत सारांश — कांकरिया आशा

२३) सूत्रकृतांगाची पर्यायवाची नावे — कांकरिया निर्मला

२४) सूत्रकृतांगातील सुभाषिते — कर्नावट कमल

२५) सूत्रकृतांगातील षट्जीवनिकायरक्षा — कटारिया संगीता

२६) सूत्रकृतांग : दर्शनप्रधान या आचारप्रधान — खणसे पारमिता

२७) उदगेण जे सिद्धिं उदाहरंति : तौलनिक समीक्षा — कुलकर्णी मनीषा

२८) 'वीर्य' अध्ययन से होनेवाला सामान्य बोध — ललवाणी प्रतिभा

२९) 'वैतालीय' अध्ययनातील मुनींची सहिष्णुता — लोढा मदन

३०) सूत्रकृतांग का सार — लोढा शोभा

३१) सूत्रकृतांग की षड्द्रव्य–नवतत्त्व दृष्टि से समीक्षा — लुंकड कमल

३२) 'ग्रंथ' अध्ययन में आदर्श अध्यापक — मालु बालचंद

३३) नरक : एक वास्तव अथवा संकल्पना — मुनोत संगीता

३४) सूरं मण्णइ अप्पाणं : गाथासमीक्षा — मुनोत सविता

३५) Ideal Teacher according to 'Grantha' — मुथा अनीता

३६) स्त्रीपरिज्ञा : एक प्रतिक्रिया–क्या भगवन् आप भी ! — मुथा ज्योत्स्ना

३७) कुशील अध्ययनातील पार्श्वस्थ — मुथा कल्पना

३८) सूत्रकृतांग का दार्शनिक विश्लेषण – श्रीमद् राजचंद्र के अनुसार — नहार हंसा

३९) 'धर्म' अध्ययनातील पंचमहाव्रते – गीता, धम्मपद व पातञ्जलयोगाच्या तुलनेत — नहाटा संगीता

४०) 'ग्रंथ' अध्ययनातील गुरुमहिमा — नवलाखा आरती

४१) उपसर्गपरिज्ञा में पार्श्वस्थों का स्त्रीसंगविषयक दृष्टिकोण — निर्वाण अर्जुन

४२) 'ग्रंथ' अध्ययनातील आदर्श शिक्षक — ओसवाल छाया

४३) सूत्रकृतांगाच्या निमित्ताने भगवान महावीरांना पत्ररूपाने आमंत्रण — ओसवाल ललिता

४४) 'आदान' अध्ययन के पाँच संक्षिप्त सुभाषित — पारख सुरेखा

४५) 'वैतालीय' अध्ययन में वर्णित मुनि की सहिष्णुता — पारख विजय

४६) उदगेण जे सिद्धिं उदाहरंति: काव्यद्वारा सादरीकरण — समदडिया चंदा

४७) 'ग्रंथ' अध्ययनातील विभज्यवाद — संचेती लीना

४८) 'वीर्य' अध्ययन : एक समीक्षा — शहा जयबाला

४९) सूत्रकृतांग में प्रयुक्त उपमाएँ — शेठिया राजश्री

५०) काँटों में गुलाब — शिंगवी पुष्पा

५१) उपसर्गपरिज्ञा — शिंगवी रंजना

५२) संबुज्झह ! किं न बुज्झह ? — शिंगवी विनोदिनी

५३) आदर्श शिक्षक कैसे बनें ? — श्रीश्रीमाळ ब्रिजबाला

५४) 'ग्रंथ' अध्ययन आणि आदर्श शिक्षक — सुराणा सीमा

५५) 'आदान' अध्ययनातील पाच सुभाषिते — भन्साळी संतोष

●●●

(३) सूत्रकृतांग में अन्धविषयक दृष्टान्त

– कुमुदिनी भंडारी

सूत्रकृतांग में हमें चार जगहों पर अन्ध के दृष्टान्त दिखायी देते हैं ।

१) जैसे अन्धव्यक्ति दूसरे अन्ध को मार्ग में ले जाता हुआ उन्मार्ग में पहुँच जाता है वैसे अज्ञानवादी असंयम का अंगीकार करके मोक्षमार्ग से भटक जाते हैं।

२) जैसे कोई अन्धव्यक्ति छेदवाली नौका पर आरूढ होकर, नदी पार करना चाहता है परन्तु बीच में ही डूब जाता है वैसे मिथ्यात्वी अनार्य श्रमण संसार पार करना चाहता है परन्तु पार नहीं करता ।

३) अन्धे के समान है ज्ञानचक्षुहीन अज्ञानी जीव ! तू, सर्वज्ञ के वचनों पर श्रद्धा रख !

४) जैसा नेत्रहीन व्यक्ति हाथ में दीपक होते हुए भी, इधर-उधर की चीजों का रंग-रूप नहीं देख पाता वैसे अक्रियावादी लोग, कर्म के परिणाम देखते हुए भी, उन्हें देखते नहीं ।

इन सभी दृष्टान्तों में अन्धव्यक्ति की तुलना मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी और ज्ञानचक्षुहीन लोगों के साथ की गयी है ।

ज्ञानप्राप्ति में आँखों का सहभाग जरूरी है, इसमें कोई शक नहीं है । लेकिन क्या सभी अन्ध मिथ्यादृष्टि या अज्ञानी होते हैं ? जैन धर्मेतिहास में अन्धव्यक्ति के दीक्षित होने का एक भी उदाहरण नहीं पाया जाता । किसी भी तरह की इन्द्रिय-विकलता, व्यक्ति को दीक्षा के अयोग्य ही मानी गयी है । दीक्षा के बाद अगर ऐसा कुछ प्रसंग आता है, तो उन्हें दीक्षा छोडनी

नहीं पडती । लेकिन अव्यंगव्यक्ति ही दीक्षा की अधिकारी होती है । इस सम्बन्ध में यह विचार उभरकर आता है कि अन्धव्यक्ति अगर पूरी वैराग्य-सम्पन्न हो, तो उसका लिहाज जैनधर्म ने क्यों नहीं किया है ? अन्धव्यक्ति के वैराग्य का कोई भी मायने नहीं है ? वैसे भी साधु-साध्वी संघ में ही रहते हैं । संघ के आचार में वैयावृत्य का प्रावधान भी है । अगर एखाद व्यक्ति अन्ध हो तो उसकी संघ में सहजता से सेवा भी की जा सकती है। इन प्रश्नों पर जब विचारमन्थन शुरू होता है तो सामने आता है, समाज का प्रभाव । आज भी और सूत्रकृतांग के समय भी अन्धलोगों के प्रति समाज का दृष्टिकोण अनुदार ही रहा है । उन्हें गौण समझते हैं और समझते थे । किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की पूजनीय व्यक्ति हमें अन्ध या अपंग नहीं दिखायी देती । इसकी कारणमीमांसा हम इस प्रकार कर सकते हैं -

१) अपंग व्यक्ति सामान्य गतिविधियाँ सुचारू रूप से नहीं कर सकती । उसका अहिंसापालन ठीक से नहीं हो पाता । अहिंसा तो धर्म का मूल है । उसपर आघात हो सकता है ।

२) साधुसाध्वी आदर्शभूत है । किसी विकलांग को हम आदर्श रूप में सोच भी नहीं सकते ।

३) अगर एक विरागी अन्ध को दीक्षा दी तो शायद इतर अन्धव्यक्ति वैराग्य न होते हुए भी केवल चरितार्थ के लिए दीक्षा ले सकते हैं ।

४) अन्धव्यक्ति के बारे में लोग कह सकते हैं कि, 'यह तो खुद अन्धा है । यह हमें क्या रास्ता दिखायेगा ?'

५) विहार या गोचरी के समय बहुत से लोगों का वह उपहासपात्र या दयापात्र हो सकता है ।

६) जब देवताप्रीत्यर्थ बलिविधान किया जाता है तब बलि का पशु भी सुलक्षणी और अव्यंग होता है । साधु तो आदर्शभूत है । वह सभी दृष्टि से अव्यंग होने की ही अपेक्षा की जाती है ।

जैन सिद्धान्तों की अगर बात करें तो अनेकान्तवाद समझाने के लिए भी हाथी और सात अन्धों का दृष्टान्त किया जाता है ।

●●●

(४) सूरं मण्णइ अप्पाणं–एक अनोखी गाथा

– सुमतिलाल भंडारी

'नामदेव म्हणे श्रेष्ठ ग्रंथ ज्ञानेश्वरी, एक तरी ओवी अनुभवावी', हा अभंग ऐकला व मला तशाच एका श्रेष्ठ ग्रंथाची – सूत्रकृतांगाची आठवण झाली. त्यातली एक तरी गाथा स्वत: अनुभवावी असे प्रकर्षाने वाटू लागले. विचार करता करता, 'सूरं मण्णइ अप्पाणं, जाव जेयं न पस्सति ।' ही गाथा डोळ्यासमोर आली. मी ती गुणगुणू लागलो, अन् थोड्याच वेळात एका वेगळ्याच भावविश्वात पोहोचलो. विचार करता करता, मला त्या गाथेत, अर्थांची अनेक वलये दिसू लागली. संतवचनातील तेजाचा साक्षात्कार होऊ लागला व माझी समाधी लागली.

त्या अवस्थेत मी पाहिले की, मी भगवान महावीरांच्या धर्मसभेत जाऊन बसलो आहे. तेथे अनेक नवदीक्षित साधू बसले आहेत. प्रवचन चालू आहे. विषय अर्थातच 'सूरं मण्णइ अप्पाणं' हाच होता. महावीर सांगत होते की, 'जोपर्यंत अडचणी येत नाहीत, तोपर्यंत भित्री माणसे स्वत:ला शूर समजतात. सर्व जग आपल्या मुठीत आहे, या संभ्रमात वावरतात. इतरांना तुच्छ लेखतात. पण तसे नसते. माणसाची खरी कसोटी लागते ती अडचणी समोर उभ्या ठाकल्यावरच. हे श्रमणांनो, तुम्ही दीक्षा घेतलीत, साधु-जीवनाला आरंभ केलात, आता तुम्हाला अनेक परीषह, अनेक उपसर्ग सहन करावे लागतील. अनेक अडचणींना तोंड द्यावे लागेल. त्याची तयारी ठेवा. स्वत:ला आताच आत्मसंयमी मानून गाफील राहू नका.'

मला माहीत होते की महावीर, समोरचे श्रोते पाहून, त्यांच्या त्यांच्या बौद्धिक क्षमतेनुसार प्रवचन देतात. त्यांच्या भाषेत बोलतात, मनात विचार आला, पाहू या,

इतरांना काय सांगतात ते. मी मग महावीरांच्या दुसऱ्या धर्मसभेत पोहोचलो. तेथे शास्त्रे पठण केलेली विद्वान, पंडित मंडळी उपस्थित होती. प्रवचनाचा विषय 'सूरं मण्णइ अप्पाणं' हाच होता. महावीर सांगत होते, 'हे विद्वान जनहो, ही गाथा लक्षपूर्वक ऐका. तुम्ही शास्त्राचे जाणकार आहात. तुम्ही सर्वांनी भरपूर अध्ययन केले आहे. पण तुम्ही केलेल्या या अध्ययनाने हुरळून जाऊ नका. इतरांना तुच्छ लेखू नका. कारण तुम्ही केलेले अध्ययन म्हणजे समुद्रातील एक थेंब आहे. तुम्हाला अजून बरेच अध्ययन करायचे आहे. अनेक शंकांचे निरसन करून घ्यायचे आहे. हे लक्षात असू द्या.'

महावीरांच्या तिसऱ्या धर्मसभेत, लोहार, कुंभार, शिंपी, श्रीमंत श्रेष्ठी इ. सामान्य लोकांना महावीर सांगत होते की, 'हे सज्जनांनो, तुमचे सगळे आयुष्य सुखाचे व समाधानाचे चालले आहे. काही लोक तर सोन्याचा चमचा तोंडात घेऊन जन्माला आले आहेत. हे तुमच्या पूर्वसंचिताचे फळ आहे. यात तुमचा पुरुषार्थ तो कसला ? तेव्हा बढाया मारू नका. दुसऱ्याला कमी लेखू नका आणि कसोटीचे क्षण आले तर त्याला तोंड द्या.'

ही प्रवचने ऐकली व एक वेगळीच शंका मनात आली. वास्तविक पाहता, स्वत:ला शूर समजणे हे आत्मविश्वासाचे प्रतीक आहे. तसेच तो पुरुषार्थाचा पायाही आहे. असे असताना, भित्री माणसेच फक्त स्वत:ला शूर समजतात, हे कसे? आणि सर्वांनी काय सदैव स्वत:ला कमीच लेखत रहावे ? महावीर असे कसे सांगू शकतात ? मला ज्ञानेश्वरीतील एक ओवी आठवली,

राजहंसाचे चालणे । भूतळी जालिया शाहाणें ।
आणिकें काय कोणें । चालोवेंचिना ।। १८–१७१४

समस्त भूतलावर राजहंसाचे चालणे डौलदार आणि सुंदर आहे. म्हणून काय इतरांनी चालूच नये ?

मनात हा विचार आला आणि अस्वस्थ झालो. तसाच तडक महावीरांच्या धर्मसभेत जाऊन बसलो. सभा संपल्यावर महावीरांना मनातली शंका विचारली. महावीर हसले व म्हणाले, 'हे भद्र, तुझ्या मनातली शंका रास्त आहे. पण माझ्या गाथेचा व माझ्या म्हणण्याचा तो अन्वयार्थ नव्हता. मला सर्वांना एवढेच सांगायचे होते की, सुरळीत आयुष्य जगणारी डरपोक माणसेच स्वत:ला शूर समजतात व शेखी मिरवितात. पण एकदा का अडचणी आल्या की ती विचलित होतात. आपल्या ध्येयापासून, कर्तव्यापासून पळ काढायचा प्रयत्न करतात. तेव्हा तसे करू नका. या गाथेतला 'सूरं' हा शब्द 'अहं' भावनेचे प्रतीक आहे. त्याला अंगिकारू नका. इतरांना तुच्छ लेखू नका. मोहावर विजय मिळविणे हे एक आव्हान असते. ते स्वीकारा. अडचणींचा सामना करा. त्यात तुमचे शूरत्व आहे. त्यात तुमचा पुरुषार्थ आहे. ध्येयाच्या शिखराकडे लक्ष असू द्या. छोट्या-मोठ्या यशावर समाधान मानू नका आणि हे सर्व करता करता, परमात्म्याशी एकरूप होण्याचा प्रयत्न करा. ते तादात्म्यच तुमच्या प्रगतीला पूरक ठरेल.'

महावीरांचे हे बोलणे ऐकले व मनातली खळबळ नाहिशी झाली. त्यांच्या शब्दाशब्दांतून व्यक्त होणारी तळमळ, लोकांच्या कल्याणाची काळजी पाहून त्यांच्याविषयीचा आदर दुणावला. शांत व तृप्त मनाने मी घराकडे वळलो.

●●●

(५) वादविवाद-संगम : एक समीक्षा

– शकुंतला चोरडिया

स्वसमय-परसमय या जीवनाच्या दोन मुख्य सिद्धांतांवर सूत्रकृतांगाची रचना झाली. लोकांची मती, नीती, प्रवृत्ती बघून भगवंतांनी तत्त्वांची विखुरणी केली. विचारांच्या झऱ्यात प्रवाहित होऊन चिंतनाच्या खळखळाटाने मनाची दारे उघडली. समवसरणाच्या नव्या अर्थाची गवसणी झाली आणि ३६३ पाखंडींची मते नोंदविली गेली. वादविवाद सभा रंगत गेली. वेगवेगळ्या वादींचे विचार ऐकण्याची संधी मिळाली. वादविवाद संगमाच्या सभेची समालोचना करून यथार्थाची मात्र दृष्टी मिळाली.

इहलोक, परलोक कोणी पाहिले, प्राप्त वर्तमान स्थितीत मनसोक्त रमले,
पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ, सदाचार-दुराचाराच्या व्याख्याच विसरले,
पंचमहाभूतांनी वेष्टित अशी चेतना गेल्यावर, आत्माराम मातीतच विरले,
अशी भ्रांती ठेवणारे बृहस्पतीमतानुयायी चार्वाक अज्ञानवादीत गणले गेले.

एकाच आत्म्याने भिन्न-भिन्न रूप धारण केले,
मती सुधारली त्याने पुण्य केले, मती बिघडली त्याने पाप केले,
सुख-दु:खाचे मूल्यमापन तुमच्या कर्तृत्वावर गेले,
केवळ आत्मा हेच अंतिम सत्य मानले आणि
पुद्गलांना गौण केले, ते आत्मद्वैतवादी एकात्मवादी ठरले.

पंच महाभूतांचा समुदाय म्हणजे शरीर त्यात आत्म्याचे अवतरण झाले,
प्रत्येक शरीराचा आत्मा वेगळा, म्हणून ज्ञान अज्ञानाचे गट झाले,

शरीराबरोबर आत्म्याचे विघटन झाले, नित्य असे काहीच नाही उरले,
शरीर आणि आत्मा वेगवेगळे आहे,
हे न समजल्यामुळे तज्जीवतच्छरीरवादी बनले.

आत्म्याचे अस्तित्व स्वीकारले, पण आत्म्याचे कर्तृत्व-भोक्तृत्व नाकारले,
अज्ञानाच्या वाटेने निघाले अन्, असत्याच्या अंधारात फसले,
काय करावे, काय करू नये, हे न सुचल्यामुळे सारे ईश्वरीसत्तेवर सोडले,
कर्मबंधाच्या भयाने क्रियांचेच निषेध केले, ते अकारक-अक्रियावादी ठरले.

रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्काराला क्षणमात्र स्थिर रहाणारे स्कंध मानले,
पृथ्वी, पाणी, तेज, वायु आदि धातूंनी,
शरीरात परिणत होणाऱ्याला जीव समजले,
दु:खातून मुक्त करणाऱ्या यतिधर्माला कधी न जाणले,
जन्म-मरणाच्या चक्रात फिरतच राहिले,
आत्म्याची सत्ता नाहीच असे मानणारे,
अफलवादी, धातुवादी, क्षणिकवादी ठरले.

पाच महाभूतांबरोबर सहावा आत्मा आणि लोक मानले,
ईश्वरी सत्ता नाही, सुख-दु:ख न स्वयंकृत,
न अन्यकृत, जे घडले ते सारे नियतीनेच घडले,
जे असत् ते कधीच उत्पन्न न झाले, जे सत् आहे तेच नित्य राहिले,
आत्मा सहेतुक-अहेतुक दोन्ही प्रकाराने नाश पावत नाही,
असे सांगणारे नित्यवादी, नियतिवादी ठरले.

कर्म परिणामाची चिकित्सा न करता कर्मकांड अनुष्ठानाला महत्त्व दिले,
कर्म बंधनाची तीन कारणे, कृत-कारित अनुमोदन मानले,
भावाच्या विशुद्धीने कर्म तुटले, कर्मबंध नसल्याने मोक्षगामी झाले,
ज्ञानाचा निषेध करून क्रियेनेच स्वर्ग-मोक्ष मानणारे क्रियावादी बनले.

समीक्षा

साऱ्या वादींचे मत जाणून भगवंतांनी सूक्ष्म समीक्षा केली आणि सरळ, सोप्या भाषेत दृष्टांत देऊन गहन अर्थाची शिदोरी दिली.

१) अंधाच्या हातात दिवा दिला तर तो अंधाराशिवाय काय पहाणार ? तसेच अज्ञानाच्या अंधाराने घेरलेल्याला ज्ञानाची वाट कशी दिसणार ?

२) बंधन आणि मुक्तीचे ज्ञान नसलेला मूर्ख हरीण जेथे नको तेथे अडकतो आणि दु:खाला आमंत्रण देतो. तसेच दहा प्रकारच्या धर्माला न जाणणारा, क्रोध, मान, माया, लोभ आणि कषायाच्या फाफट पसाऱ्यात अडकून दु:खाला ओढून घेतो.

३) आंधळ्याच्या मागे आंधळा चालत राहिला तर इच्छित स्थानावर कधी पोहोचणार तसेच अधर्माच्या रस्त्याने जाणारा मोक्षाला कधी गाठणार ?

४) पिंजऱ्यातला पक्षी पिंजराच सोडत नाही तसे अज्ञानी आपल्या मिथ्यामान्यतेची कासच सोडत नाही आणि संसारातून मुक्त होण्याचा मार्गही पहात नाही.

५) जन्मांध मनुष्य छिद्र पडलेल्या नौकेत बसून नदी पर करण्याची इच्छा करतो परंतु मध्येच नौकेत पाणी भरल्याने डुबतो तसेच मिथ्यादृष्टी

अनार्य श्रमण मिथ्या क्रियाकांडात अडकतो. संसारसागरातून पार होण्याऐवजी संसारातच डुबतो.

भगवंत म्हणतात –

हे साधका ! पाच समितीचे पालन कर. तीन गुप्तींचे रक्षण कर. सर्व पदार्थाची आसक्ती सोडून करीत असलेल्या क्रियाकांडाचा विचार कर. ज्ञान, दर्शन, चारित्र्याचा आराधक होऊन ग्रहण केलेल्या संयमात सम्यक्प्रकारे प्रवृत्ती कर आणि पुरुषार्थाने कर्मबंधनाचे पाश तोडून सिद्धश्रीची माळा धारण कर.

●●●

(६) आदानीय अध्ययन

– आशा कांकरिया

त्रायिन् , त्रिकालविद् ,
तिन्नं आणि तारयाणं,
हे तर घाती कर्मांचा क्षय करणाऱ्या,
अरिहंतांचे विशेषण ।।

चित्त विप्लुतीच्याही पलिकडले,
असे आहे ज्यांचे केवलज्ञान,
अनुभूत सिद्ध अनुपम तत्त्वांचे,
करतात जे आख्यान ।।

सत्याने संपन्न, यथार्थ अशा,
ज्ञानाचे होते प्रकटीकरण,
अध्यात्म व आत्ममयता,
हेच त्याचे खरे कारण ।।

इथे तिथे कुठेही भेटणार नाहीत
असे महान उदाहरण,
म्हणून तर त्यांचे,
करायलाच हवे अनुसरण ।।

सर्व भूतमात्रांशी मैत्रीभावना,
हा तर ऋषींचा धर्म,
या जीवित भावनेतच,
दडले आहे सत्य (मैत्री) धर्माचे मर्म ।।

भावना योगानेच समस्त कर्मांचा,
अंत येतो साधता,
अनुकूल वाऱ्याच्या संयोगाने नावेलाही,
सहजपणे तीर येतो गाठता ।।

पूर्वसंचित कर्मांचा क्षय,
आणि नवीन कर्मांचे नाही बंधन,
अशा मेधावी लोकांना,
पुन्हा नाही जन्म आणि मरण ।।

सिद्धस्वरूप अस्तित्वाला,
कधीच धोका नाही संभवत,
आजही अखंडपणे वाहत आहे,
त्यांची ज्ञानधारा अविरत ।।

असे द्रष्टा लोकच होतात,
कामवासनेचे पारगामी,
सूक्ष्म जाळे ओलांडून जाणाऱ्या वाऱ्यापेक्षा,
कोणती बरे उपमा द्यावी !

अणाविल, छिन्नस्रोत दमनशील साधु,
अन्नामध्ये गृद्ध नसतो,
म्हणून तर तो मोक्षाशी,
संधान जोडू शकतो ।।

मन वचन कायेचा योग,
ज्याला साधता येतो,
तोच ज्ञानाराधनेमुळे सर्वांचा,
चक्षुष्मान ठरतो ।।

प्रतिपूर्ण धर्माची प्ररूपणा,
व आचरणानेच होतात कर्मांचे अकर्ता,
अशा वीतरागी महापुरुषांना,
पुन्हा कसली हो जन्मकथा ।।

पंडित वीर्याने युक्त असे पुरुष,
'महावीर'च असतात,
पूर्वसंचित कर्मक्षयाने,
शुद्ध आत्मस्वरूप प्राप्त करतात ।।

एकाहून एक सुंदर, उपादेय,
विचारांची आहे यात गुंफण,
काव्यालंकाराने युक्त यमकबद्ध,
असे हे आदानीय अध्ययन ।।

●●●

(७) जलसम्बन्धी विचार (वैदिक और जैन संदर्भ में)

– मनीषा कुलकर्णी

वैदिकों के वैष्णव और शैव इन पन्थों में यह दृढ मान्यता है कि पानी से बाह्य परिसर, शरीर एवं मन की शुद्धि होती है । गणपति-पूजन के पहले पूजास्थल, पूजासाधन आदि की शुद्धि पानी प्रोक्षण के द्वारा करते हैं । उसके लिए यह मन्त्र प्रयुक्त होता है –

अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा ।
यद् स्मरेत् पुंडरिकाक्षं सबाह्याभ्यंतर: शुचि: ।।

इसके बाद वरुणपूजा एवं कलशपूजा करते हैं । इसमें वैदिकादि कहते हैं कि–

।। वरुणाय नम: ।। कलशाय नम: ।।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

वरुणपूजा लगभग सभी धार्मिक विधियों में करने का विधान है । वेदों के अनुसार वरुणदेवता ऋतसम्बन्धी एवं जलसम्बन्धी देवता है । वरुण के आधार से सब जगत् टिका है । वैष्णव लोग विहार करते समय हमेशा कमंडलु का पानी डाल के भूमिशुद्धि करते हैं । वैष्णव लोग सीधा पानी डालते हैं तो शैव लोग समांतर पानी डालते हैं । अस्तु !

जैनशास्त्र के अनुसार पानी जड पंचमहाभूत नहीं है । पानी के शरीरवाले जीवों को वे अप्कायिक जीव कहते हैं । उपरोक्त रुढियों का कठोर खंडन जैनग्रन्थों में पाया जाता है । 'उदगेण जे सिद्धिं उदाहरंति'– यह गाथा सूत्रकृतांग (१) के सातवें अध्ययन की चौदहवीं गाथा है । उसमें कहा है कि, 'पानी छिडकने से अगर

सिद्धि या लब्धि प्राप्त होती तो मछलियाँ आदि जलचर जीव पूरी उम्रभर पानी में होने के कारण कब के मोक्षगामी हुए होते ।'

जैन कहते हैं कि रूढ मान्यताओं को छोडकर तर्काधिष्ठित रहो । बुद्धि से सब की जाँच, विवेक करों और सिद्धशिलातक पहुँचों ।

वैदिक, वैष्णव आदि सब आचमन, संकल्प, स्नान, त्रिकालसन्ध्या आदि में पानी का उपयोग काफी मात्रा में करते हैं । पूजा समाप्ति में वे कहते हैं कि –

अकालमृत्युहरणम् सर्वव्याधिविनाशनम्
विष्णु/शिव पादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ।।

नदीस्नान या समुद्रस्नान की बात तो दूर ही है, जैनियों के साधुआचार में अस्नानव्रत को ही सर्वाधिक स्थान दिया है । तालाब, सरोवर, नदी, समुद्र आदि से सम्बन्धित सामाजिक उत्सवों का भी जैनियों में प्रचलन नहीं है । सूत्रकृतांग आगम में स्नानद्वारा शुद्धि की मान्यता को करारा जवाब दिया है । शरीर शुद्धि के बदले चित्तशुद्धि का महत्त्व खास तौरपर बताया है । जल का अपव्यय करने को प्राणातिपात याने हिंसा ही समझा है ।

●●●

(८) 'ग्रन्थ' अध्ययन में आदर्श अध्यापक

– बालचन्द मालु

'सूत्रकृतांग' इस आगम के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन हैं । उसका चौदहवाँ अध्ययन 'ग्रन्थ' है ।

प्राचीन समय में नवदीक्षित साधुको सभी परिग्रहों को तोडकर 'गुरुकुल' में रखा जाता था । उसे आचार्यद्वारा सभी शिक्षाएँ मिलती थी । वह स्वावलम्बन से, संयम से अनुशासन में रहकर ब्रह्मचर्य पालन करता था । ऐसा शिष्य 'ग्रन्थी' कहलाता है । धर्म और आगमज्ञान परिपक्व होनेतक आचार्य उसका दुष्प्रवृत्ति से संरक्षण करते थे । गुरु के सान्निध्य से शिष्य का आचरण ओजस्वी और सम्यक्त्वी बनता था ।

प्रतिभासम्पन्न शिष्य बनवाने के लिए गुरु को भी अनुशासन पालना पडता था । 'ग्रन्थ' अध्ययन के मार्गदर्शन से 'आदर्श अध्यापक' बनवाने के लिए नीचे बताये हुए कुछ विशेष गुणों की जरूरत होती है ।

सबसे पहले अध्यापक को मूलत: प्रज्ञावान और समझदार होना जरूरी है। अपने विषयमें प्रवीण होने के कारण ही वह सूरज के समान चारों ओर से प्रकाशित करने जैसा ज्ञान दे सकता है । अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया सजीव होती है । इसलिए अध्यापक को द्वेषभाव टालकर परस्परों में प्रेमभाव का संवर्धन करना होगा। किसी भी छोटी सी शंका का पूर्णता से समाधान करने की कला याने शिक्षक का शैक्षणिक मानसशास्त्र और शिक्षणशास्त्र उत्तम होना जरूरी है । सभी शंकाओं का समाधान करते समय किसी भी अर्थ का अनर्थ न करे या होनेवाले अहंकार से हमेशा दूर रहें ।

शंका-समाधान मृदुभावसे होगा तो किसी का भी तिरस्कार नहीं होगा । अखण्ड झरने जैसा निर्मल ज्ञान मधुर वाणी से देने के लिए अध्यापक निरन्तर अभ्यास करनेवालाही होना चाहिए । प्रत्येक वस्तु 'अनेक धर्मी' होती है । इसलिए कोई भी अर्थ स्पष्ट करते समय 'स्याद्वाद' से प्रत्येक विधान की सत्यता सामने लाए । सत्य हमेशा कडवा और कठोर होता है । इसलिए समझदारी से स्वयं की प्रशंसा टालकर, कषाय न बढाते सत्य विधान करें । बोलते समय संदिग्ध या अधूरा न बोले लेकिन विभज्जवाद से सत्य और तथ्य स्पष्ट करें । अनेकान्तवाद से किसी भी सूत्र की समीक्षा करें और निन्दा टालें । किसी भी प्रश्न का उत्तर मर्यादित हो, उसे अनावश्यक बढाना ठीक नहीं अन्यथा स्वयं के और दूसरों के पापविकारों की ओर ध्यान देना होगा ।

नया संशोधित ज्ञान निरन्तर प्राप्त करके, चिन्तन करने से समय का सदुपयोग होगा और दूसरे की मर्यादा सम्भाली जाएगी । वक्तृत्व का सम्यक् व्यवस्थापन करनेवाला कभीभी संकुचित विचार प्रस्तुत नहीं करता और दूषित दृष्टि नहीं रखता। इसी कारण सूत्र और अर्थ में सुसंगति लाना जरूरी है । अध्यापक के वाणी में सागर के संथ लहर जैसी सरलता और प्रमाणबद्धता आवश्यक है ।

सद्यस्थिति में अगर कोई अध्यापक इस अध्ययन में निहित तथ्योंपर विचार एवं अमल करेगा तो वह जरूर आदर्श अध्यापक बनेगा ।

●●●

(९) नरक : एक वास्तव अथवा संकल्पना ?

– संगीता मुनोत

जितना गहन तिमिर मावस में होगा, उतनी सुबह उजाली होगी,
जितनी सन्देह में विरानी, उतनी विश्वास में हरियाली होगी ।
स्वर्ग-नरक है सत्य, नहीं इसमें सन्देह कहीं,
प्रभुवाणी तो त्रिकाल में, सत्य सत्य सत्यही होगी ।

विश्व के सभी धर्म जिस विषयपर एकमत हैं, वह है नरक की सत्यता । नरक विषय संकल्पनात्मक नहीं है । जैनधर्म ने भौगोलिक आधारों पर बतायी हुई यह एक वास्तविकता है । यह सत्य है कि विज्ञान आजतक नरक को खोज नहीं पाया है । मात्र इसके आधार पर हम नरक के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकतें । विज्ञान की अपनी मर्यादाएँ सिद्ध है । जैसे मूलतत्त्वों की संख्या धीरे-धीरे बढती हुई विज्ञान की दृष्टि से १११ हो गयी है । जैन आगमानुसार मूलतत्त्वों की संख्या पहले ही १६८ बतायी जा चुकी है । वैसे ही शायद नरक की भी खोज की जायेगी ।

सूत्रकृतांग में पाचवें 'नरकविभक्ति' नामक अध्ययन में, नरक का वर्णन दिखायी देता है । टीकाकारों ने इसी के आधार से नरक शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से दी है –

१) नीयन्ते तस्मिन् पापकर्माणा इति नरका: ।

२) न रमन्ते तस्मिन् इति नरका: ।

अर्थात् पापकर्म करनेवाले प्राणी जहाँ पर वेदना, पीडा और दु:खों को भोगता है, सुख नहीं पाता, वह स्थान नरक है ।

स्थानांगसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र और सूत्रकृतांग के इस अध्ययन में सारांशरूपेण नरकगमन के मुख्य चार कारण या हेतु बतलाए हैं । नारकी जीव तीन प्रकार से यातनाएँ भोगता है । इसका विस्तृत वर्णन जैन मूलग्रन्थों में विस्तार से पाया जाता है।

सूत्रकृतांग में नरक का वर्णन क्रमश: प्राप्त नहीं होता परन्तु बाकी जगह सात नरक की भूमियाँ, उनके स्थान, नाम, रचना, लम्बाई-चौडाई, गति-स्थिति आदि का इतना विस्तृत वर्णन मिलता है कि सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं है । बौद्ध और ब्राह्मण परम्पराएँ भी इसका समर्थन करती है ।

यह बात बार-बार पूछी जाती है कि नरक के शारीरिक दु:खों का वर्णन ही बार-बार क्यों किया जाता है ? इसका उत्तर यह है कि आत्मा सुख-दु:ख से परे है, अजर-अमर-अविनाशी है । आत्मा को कोई मार-काट या जला नहीं सकता। तो फिर जो भी दु:ख है वह शारीरिक ही होगा । दूसरी एक बात कही जाती है कि इसी पृथ्वीतल पर हम जो भी नरकसदृश रोग, दु:ख, पीडा, प्रदूषण, आतंकवाद, युद्ध आदि भोग रहे हैं – यही नरक है । इसके प्रतिवाद में कहती हूँ कि यह तो इस अवसर्पिणीकाल के पंचम आरे का प्रभाव है । इस काल में पाये जानेवाले सुख-दु:ख, सुखाभास और दु:खाभास है । इसलिए वे नरक के दु:ख नहीं हो सकते ।

मनुष्य अपने सभी कृत पापकर्मों को यहाँ नहीं भोग पाता है । इसके लिए हमारे पास श्रेणिक राजा, श्रीकृष्ण आदि कई उदाहरण है । इसलिए मेरा मानना है कि भगवान की वाणी त्रिकाल सत्य है । नरक एक संकल्पना न होकर सत्य ही सत्य है, वास्तविकता है ।

●●●

(१०) स्त्रीपरिज्ञा : एक प्रतिक्रिया : क्या भगवन आप भी !

– ज्योत्स्ना मुथा

सूत्रकृतांग में विविध दार्शनिक और धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख हैं । जैन दर्शन की रूपरेखा व्यवस्थित रूप से भले न बताई हो पर परिग्रह को सबसे कठोर बन्धन कहा है । उसे जानकर तोडने के लिए –

बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा बंधणं परिजाणिया ।
किमाह बंधणं वीरो, किं वा जाणं तिउट्टई ।।

इस गाथा से ही इस श्रुतस्कंध की शुरुआत की है । उपसर्ग, धर्म, समाधि, वैतालीय, कुशील, वीर्य अध्ययन में इसी बात पर जोर दिया है । पर बीच में ही 'स्त्री परिज्ञा' नामक अध्ययन में विशेषत: दूसरे उद्देशक में स्त्रीवृत्तियों का जो वर्णन किया है उसे पढकर एकाएक मुँह से निकला, 'क्या भगवन् आप भी !'

क्या आप वही भगवन् हो जिन्होंने स्त्रीदास्यत्व दूर किया । अपने संघ में साधु के साथ साध्वी को तथा श्रावकों के साथ श्राविकाओं को तीर्थ के रूप में स्थान दिया । चंदना को संघप्रमुखा बनाया । आप तो त्रिकालदर्शी हो । आप भूत, भविष्य और वर्तमान अच्छी तरह से जानते थे । तो आप को ये सब पता है ना ? प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के समय बाहुबली को जगानेवाली ब्राह्मी सुंदरी जैसी बहने थी । भरत चक्रवर्ती अपने से दूर रहें इसलिए साठ हजार आयंबिल करनेवाली सुंदरीही थी । 'अंकुसेण जहा नागो' इस प्रकार रथनेमि को साधुत्व से भ्रष्ट होते हुए बचानेवाली राजीमती एक स्त्री ही थी । अपने शीलरक्षण के लिए अपनी जिह्वा खींचकर मरनेवाली चंदना की माँ धारिणी आपको पता थी । प्रकाण्ड पंडित आ. हरिभद्र को ज्ञान देनेवाली याकिनी महत्तरा एक स्त्री ही थी । जहाँ तक आपका

स्वयं का अनुभव है जब आपने दीक्षा ली तो मुँह से ऊफ् तक न निकाला वह यशोदा कौन थी ? वह तो आपके साधनामार्ग में रुकावट बनी ऐसा हमने कहीं भी नहीं पढा । भगवन् ! आपके समय साधुओं से जादा साध्वियाँ और श्रावकों से जादा श्राविकाएँ थी । आज भी कोई अलग स्थिति नहीं है । वर्तमान में जप–तप करने में महिलाएँ ही आगे होती हैं । स्वाध्याय मंडळ नारियोंसेही सुशोभित हैं । इतना ही नहीं, जैन अध्ययन और अध्यापन करने में स्त्री वर्गही आगे है और उन्हें मार्गदर्शन करनेवाली एक प्रज्ञावान स्त्री ही है । ये तो आपने अपने ज्ञान से देखा ही होगा । फिर हमपर इतना अविश्वास क्यों ? इतनी शंकाएँ क्यों ?

भगवन् इस समाज को भी आप भलीभाँति जानते हो । जिसे कोई शास्त्र का ज्ञान भी नहीं है, पर उन्हें किसीने शास्त्र की बात बतायी, तो वह समाज बिना समीक्षा किये आँखें मूँदकर उसपर विश्वास करता है । तो आपने स्त्रीसंग को टालने को (परित्याग) कहा, वह समाज तो स्त्रीजन्म को ही टालने लगा और स्त्रीभ्रूण हत्या तक उसकी सोच जा पहुँची है । क्या दीनदयालु भगवन् को ये पसंद है ? मंजूर है ?

भगवन् मोहनीय कर्म का उदय तो सभी जीवों का होता है, तो सिर्फ स्त्री को ही दोषी क्यों ठहराया गया ? आपने तो मोक्ष अवेदी को बताया है, तो स्त्रीवेद, पुरुषवेद की बात ही कहाँ ? अनेकान्त के पुरस्कर्ता भगवन् आपने ऐसी एकान्त की बात कैसे की ? स्त्रीस्वभाव का इतना रंजक वर्णन !

उपसंहार :

नहीं, नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता ! अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शी, करुणा के अवतार, जिनकी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों के प्रति

संवेदनशीलता, मैत्री भाव, समदर्शिता थी, वे ऐसी एकान्त मिथ्याबात कह ही नहीं सकते । जिनका पुरुषार्थ पर इतना विश्वास वे हमपर अविश्वास कैसे दिखा सकते हैं ? यह तो किसी स्त्रीद्वेषी व्यक्ति का काम है, जिसने यह अध्ययन इसमें जोडा है ! घट घट के अन्तर्यामी ये बात आपही अच्छी तरह से जान सकते हो या देख सकते हो । हम तो छद्मस्थ है, परंतु आपपर और आपने बताये मार्गपर हमें पूरा विश्वास है ।

●●●

(११) सूत्रकृतांग का दार्शनिक विश्लेषण : श्रीमद् राजचन्द्र के अनुसार

– सौ. हंसा नहार

द्वितीय अंग आगम, सूत्रकृतांग के प्रथम अध्ययन 'समय' में स्वसमय याने जैन सिद्धान्त तथा परसमय याने अन्य धर्मों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है ।

उन दर्शनों का निरूपण करनेवाले कुछ तत्त्वशास्त्रज्ञों के नाम –

१) षड्दर्शनसमुच्चय – आ. हरिभद्रसूरिजी, ८ वी शताब्दी

२) अन्ययोग-व्यवच्छेद-द्वात्रिंशिका – आ. हेमचन्द्रसूरिजी १२ वी शताब्दी

३) स्याद्वाद मंजरी-टीका – आ. मल्लिषेणसूरिजी, १२ वी शताब्दी (जो आगे चलकर जैन दर्शन का एक सुंदर ग्रन्थ और स्वतन्त्र मौलिक रचना के रूपमें प्रसिद्ध हुआ ।)

४) सम्यक्त्व षट्स्थान चउपइ – उपाध्याय श्री यशोविजयजी, १८ वी शताब्दी

५) आत्मसिद्धिशास्त्र (गाथा ४३ से १०० तक) – श्रीमद् राजचन्द्र २० वी शताब्दी सूत्रकृतांग के समान श्रीमद्जी ने भी किसी वादों का नामनिर्देश किये बिना गुरु-शिष्य के शंका-समाधान रूपसे तर्कयुक्त द्वारा सत्य सिद्धान्त का निरूपण किया है ।

(१) पंचमहाभूतवाद (बृहस्पतिमतानुयायी चार्वाक, जडवादी दर्शन, लोकायतिक) : पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा आकाश इन पाँच महाभूतों के संयोग से जीवात्मा की उत्पत्ति और विनाश से जीव का नाश ।

(२) तज्जीव–तच्छरीरवाद : शरीराकार में परिणत महाभूतों से आत्मा की उत्पत्ति ।

श्रीमद्‌जी का मत :

१) मृत शरीर में पाँचों महाभूत विद्यमान होने पर भी शरीरी मर गया ऐसा व्यवहार क्यों ? यह सिद्ध करता है पंचमहाभूतों से भिन्न आत्मा की सत्ता है, जिस कारण शरीर के विभिन्न अवयवरूप यन्त्र अपना अलग–अलग कार्य करते हैं ।

२) जड किसी भी काल में चेतन नहीं होता और चेतन जड नहीं होता । दोनों सर्वथा भिन्न स्वभाव के पदार्थ हैं । परस्पर गुणों का संक्रमण कर के दोनों कभी समान नहीं होते ।

३) आत्मा कोई भी संयोग से उत्पन्न नहीं होता ।

४) इन्द्रियों को अपने–अपने विषय का ज्ञान हैं परन्तु दूसरी इन्द्रियों के विषय का ज्ञान नहीं है । पाँचों इन्द्रियों के विषय को जाननेवाला और इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी स्मृतिमें रखनेवाला इन्द्रियों से भिन्न आत्मा है ।

५) जगत में जो विचित्रता दिखाई देती है, यह शुभाशुभ कर्म के बिना संभव नहीं। दूसरा श्रीमद्‌जी को ८ वर्ष की उम्र में जातिस्मरण ज्ञान हुआ । यह दोनों पुनर्जन्म सिद्ध करता है ।

(३) चार्वाक् से विपरीत आत्मद्वैतवाद (एकात्मवाद) नैयायिक :

अ) आत्मा के अतिरिक्त जड तत्त्व कोई नहीं है ।

ब) जैसे एक ही पृथ्वीपिण्ड (समुद्र, पर्वत, नगर इ.) नाना रूपों में दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा नाना रूपों में दिखाई देता है ।

क) 'वेदान्ती' ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त पदार्थों को असत्य मानते हैं ।

एकात्मवाद	**श्रीमद्‌जी**
अ) आत्मा सर्वव्यापी होने से गमन नहीं कर सकता ।	**अ)** शरीरव्यापी होने से राग–द्वेष में (परभाव में) कर्म का कर्ता होने से नाना गतियों में गमन करता है ।
ब) ध्रौव्यात्मक	**ब)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त
क) एकान्त कूटस्थ नित्य	**क)** परिणामी नित्य

(४) आत्मषष्ठवाद	**श्रीमद्‌जी**
अ) पाँच महाभूत और छट्ठा आत्मा है । चेतनायुक्त (आत्मा)	**अ)** पृथ्वी, अप्, तेज, वायु – आकाश जड (अजीव) है ।
ब) आत्मा–लोक दोनों नित्य हैं ।	**ब)** ''आत्मा द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय'' (गाथा ६८)
क) सभी पदार्थ सर्वथा नित्य हैं । असत् की उत्पत्ति नहीं, सत् का नाश नहीं ।	**क)** एकान्त–नित्य मानने पर कर्तृत्व परिणाम नहीं और कर्म का सर्वथा अभाव होगा ।

(५) क्षणिकवाद –३ बौद्धों का मत (दो रूपों में)

अ) अफलवाद (पञ्चस्कन्धवाद) : क्षणमात्र स्थित रहनेवाले रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पाँच ही स्कन्ध हैं, आत्मा नामक पृथक् पदार्थ नहीं ।

ब) चतुर्धातुवादी

श्रीमद्‌जी

अ) आत्मा को क्षणिक या आत्मा ही नहीं माना तो सुख-दुःख रूप फल का वेदन किसे होगा ? जाना और नष्ट हो गया तो कहेगा कौन ? क्षणिकता का सिद्धान्त प्रकट करनेवाला कभी क्षणिक नहीं हो सकता । जागृत-स्वप्न-निद्रा वैसे ही बाल-युवा-वृद्ध इसमें जो अवस्था का नाश हुआ उसको जाननेवाला व स्मृति में रखनेवाला आत्मा है ।

ब) क्षणिक है तो मोक्ष किसका ?

क) सिर्फ अवस्था का नाश होता है । यदि सत् का सर्वथा नाश हो तो संसार व्यवस्था न रहे ।

(६) कर्मोपचय निषेधवाद (क्रियावाद) बौद्धों का मत :

मानसिक संकल्प को ही हिंसा का कारण बताया । राग-द्वेष रहित मांसभक्षण करे तो कर्मबन्ध नहीं ।

श्रीमद्‌जी

विष-अमृत स्वयं नहीं जानते कि हमें इस जीव को फल देना है, तो भी उन्हें ग्रहण करनेवाला जीव विष-अमृत के परिणाम की तरह फल पाता है ।

(७) अकारकवाद (अक्रियावाद) सांख्य मत :

आत्मा अमूर्त, अकर्ता, नित्य तथा निष्क्रिय स्वरूप है ।

श्रीमद्‌जी

अ) कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं तो परलोक नहीं ।

ब) अपरिणामी कूटस्थ नित्य आत्मा हो तो बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था नहीं ।

क) गुण और गुणी हमेशा साथ ही होते है । प्रत्येक अवस्था 'मैं हूँ' ऐसा अनुभव ।

(८) जगत्-कर्तृत्ववाद - ईश्वरकृत लोक

श्रीमद्‌जी

कर्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव ।
अथवा प्रेरक ते गण्ये, ईश्वर दोष प्रभाव ।।(७७)

उपसंहार :

आत्मा एकान्त नित्य या एकान्त अनित्य नहीं, पर परिणामी नित्य है । इस प्रकार श्रीमद्‌जी ने निष्पक्षपात बुद्धि से एकान्तिक मान्यता का समाधान कर स्याद्‌वाद शैलीसे समन्वय साधा है । उनका प्रयोजन, खण्डन-मण्डन न कर के आत्महित को मुख्य रख के परमार्थ समझाने के लिए किया है ।

●●●

(१२) उपसर्गपरिज्ञा में पार्श्वस्थों का स्त्रीसंगविषयक दृष्टिकोण

– अर्जुन निर्वाण

उपसर्गपरिज्ञा में स्त्री को उपसर्ग के रूप में दिखाया गया है । इसके चतुर्थ उद्देशक में स्त्री को परिषह-उपसर्ग कहते हुए इस परिषह को जीतने में असमर्थ साधुओं को पार्श्वस्थ और अन्यतीर्थी कहा है ।

ऐसे साधु पार्श्वनाथ के अनुयायी थे । परन्तु उनके आचरण में शिथिलता आ गई थी । इसका कारण था आजीवक एवं अन्य पन्थीय साधुओं का स्त्रीसंगविषयक दृष्टिकोण ।

इन्ही विचारों को दर्शाने के लिए यहाँ निम्न उदाहरण दिए गए हैं –

१) पके हुए फोडे को दबाकर मवाद निकाल देने से तुरन्त आराम मिलता है वैसे ही कामसुख की इच्छा करनेवाली स्त्री से समागम करने पर होता है ।

२) भेड एवं पिंग पक्षिणी का बिना हिलाए जल पिना भी उपरोक्त स्त्री समागम के बराबर है ।

३) पूतना राक्षसी का बच्चों के प्रति लोलुप व्यवहार उसी प्रकार स्त्रीसंग भी दोषरहित ।

इन उदाहरणों से यही प्रतीत होता है कि इन साधुओं का स्त्रीसंग का विचार अच्छा नहीं है । इसके समर्थन में वे यह कहते हैं कि हम कहाँ कायम रूप से स्त्रीपरिग्रह कर रहे हैं ? जहाँ हम रात्रिनिवास करते हैं वही पर समागम सुख की इच्छा करनेवाली नारी से हम यह सुख प्राप्त करते हैं । उसमें लिप्त नहीं होते क्यों कि कामवासना सम्पूर्णत: प्राकृतिक है । परन्तु यह विचार पूर्ण रूप से स्वीकार्य नहीं होता । यहाँ पर स्त्री को ही कामसुख की याचिका बताया गया है । स्त्री को ही

दोषी ठहराया गया है । जबकी ताली एक हाथ से नहीं बजती । साधु इस याचना को अस्वीकार भी कर सकता है । परन्तु उसे मान्यता देकर वह अपने स्खलनशील होने का प्रमाण ही देता है । स्त्री को परिषह मानना यह आगम विचार इसलिए सहीं नहीं लगता । इसको उपसर्ग मानने का और ऐसे उदाहरण देने का कारण यही हो सकता है कि साधु को ऐसे विचारों से घृणा निर्माण हो और वह इनसे दूर रहें। निश्चय ही ऐसे उदाहरण निम्नस्तरवाले और एकांगी दृष्टिकोणवाले भी ।

यही पर नियुक्तिकार और चूर्णिकार स्त्री को पुरुष के समान बताते हैं । वराहमिहिर यह कहते हैं कि स्वभाव से स्त्री-पुरुष समान है । उनके गुण-दुर्गुण एक जैसेही है । परन्तु नारी जीवन और कार्यक्षेत्र ऐसा है कि दुर्गुण सामने आते हैं और गुण पीछे रह जाते हैं । परन्तु नारी अपनी बुराईयों पर विजय प्राप्त करने का हमेशा प्रयत्न करती है जबकि पुरुष ऐसा करते नहीं दिखाई देते ।

●●●

(१३) पानी की एक बूँद

– चंदा समदडिया

कह रही थी, पानी की एक बूँद मुझसे एक दिन ।
हाल ए दर्द, किस को सुनाऊँ, अब तो बहना तू ही सुन ।
चतुर्गति की मारी मैं भी, चतुर्गति की मारी तुम ।
बस् अव्यक्त चेतना हूँ मैं, और व्यक्त चेतना हो तुम ।

आज तुम्हारे हाथ में बाजी, कल पलट भी सकती ।
आज कर लो, तुम मनमानी, मैं नहीं कर सकती ।
कोई बनकर हितचिंतक, कर रहे हैं जनजागरण ।
कहते हैं पानी को, एक घटक पर्यावरण ।
डर है इन्हें, कहीं धोखे में न आ जाय उनका जीवन ।
इसलिए करते हैं, 'पानी बचाओ' आंदोलन ।

कोई कहता है, मुझे महाभूत, तो कोई कहता है H_2O ।
विद्वानों के इस मेले में, मेरा सत्य स्वरूप कहनेवाला कोई तो हो ।
कोई कहता है मुझे जीवन, तो कोई कहता है नीर ।
हमें 'स्थावर जीव' की उपाधि देनेवाले अकेले महावीर ।

कोई कहता है, जलस्पर्श से होती है आत्मशुद्धि ।
करता है स्नान बार बार, मानकर पानी से मुक्ति ।
हजारों बार, तीर्थस्नान से भी मिलती नहीं सिद्धि ।
अरे नादानों ! ये तो भ्रान्त धारणा है, विपरीत बुद्धि ।

सच बताऊँ ? किसी की आत्मशुद्धि मैं नहीं कर सकती ।
वरना क्या प्रथम पादानपर, अपने आप को न रखती ?
और तो और मुक्त हो जाते अब तक, मेरे सुखदु:ख के साथी ।
सारे के सारे जलचर, और उनकी जाति प्रजाति ।

और बिलकुल सीधी सी बात है, कैसे नहीं समझानी ।
अगर मैं पाप धो सकती हूँ, तो क्या पुण्य भी नहीं धोती ?
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, या हुतेण जे सिद्धिमुदाहरंति ।
पता नहीं उन्हें सिद्धि मिलती है या नहीं ।
पर हमारी तो नाहक ही जान जाती ।

यह मैं केवल अपने ही बारे में नहीं कहती ।
यही है मेरे स्वजनों की भी आपबीती ।
होम, हवन, अनुष्ठान के लिए कटती कितनी वनस्पति ।
नष्ट की जाती है उनकी, बीज, वृद्धि और उत्पत्ति ।
स्थावर के साथ साथ, कितने त्रस की भी बलि चढती ।
'अनार्य धर्मा' ऐसे लोगों की अकाल में ही मृत्यु होती ।

मुझे जीवन मानकर, जो मेरा ही जीवन हरता है ।
भगवान् क्या दण्ड दे उसे, वह तो स्वयं कर्ता, भोक्ता है ।
मेरी तो समझ में नहीं आता, यह कैसी तार्किकता है ।
मुक्ति हेतु खुद स्नान करता है, मुक्ति प्राप्त प्रभु को
भी स्नान करवाता है ।

उस अहिंसा के देवता को भी, फूलों से सजाया जाता है ।
'अहिंसा परमो धर्म की जय' जुलूस में नारे लगाता है ।
और केवल ज्ञान से प्रकाशित, प्रभु के सामने सैकडों दीप जलाता है ।
सही कहा तुमने, अहिंसा का स्वरूप कोई विरला ही समझ पाता है ।

सुना है आजकल पुणे में भी, हो रही है 'पानी कटौती' ।
चलो इस बहाने, वे भी बचायेंगे थोडीसी प्राकृतिक सम्पत्ति ।
जिन्होंने समझ रखी है इसे, अपने बाप की बपौती ।
इसलिए मेरी मानो, हम सबका है, सुख दुःख समान संवेदन ।
बिनती है मेरी, मत करना प्राण वियोजन ।
अब तो तुम नतीजा भी जानती हो, बार बार जन्म मरण ।
कहते हैं महावीर, इसका तो है कर्मसिद्धान्त ही कारण ।
मैंने कहा – अरे ! यही बताते हैं सूत्रकृतांग में 'मतिमान माहण'।

●●●

(१४) सूत्रकृतांगातील तीन शब्दांचे मूळ अर्थ

– चंदा समदडिया

(अ) समवसरण

जम्बूस्वामींनी केले प्रश्न कसे होते महावीर भगवान
कसे त्यांचे ज्ञान, दर्शन कसे संयम, तप आणि ध्यान ।।१।।

केले सुधर्मा स्वामींनी वर्णन ज्यांनी पाहिले महावीर जवळून
प्रत्यक्ष गुणांचे हे महावीर स्तवन झाल्या उपमा ही अजरामर ।।२।।

अशा महावीरांना वंदन करून वीरत्थुईने मंगलाचरण गेलो पहावया
समवसरण आणि पहातो तो काय ? तेथे तर वेगळेच दृश्य ।।३।।

अहो नव्हत्या सोन्या चांदीच्या भिंती नव्हते सोन्याचे परकोट
नव्हते महाप्रातिहार्य वैभव किंवा स्फटिकाचे सिंहासन होते
विद्वानांचे संमेलन एक सुरेख वादसंगम ।।४।।

मते होती तीनशे त्रेसष्ठ केले चारांतच विभाजन
क्रिया, अक्रिया, विनय, अज्ञान करून मतमतांचे समालोचन ।।५।।

स्वमताचे केले निरूपण असे होते दिव्य समवसरण
ठेवले सूत्रकृतांगाने जपून धन्य महावीर मतिमान ।।६।।

(ब) ब्रह्मचर्य–गुरुकुलवास

ब्रह्मचर्य गुरुकुलवासाचे संबोधन ब्रह्मचर्याचे अर्थ होती तीन
चारित्र, गुरुकुलवास व विरत मैथुन कळले सूत्रकृतांगातून ।।१।।

एक आदर्श शिक्षणव्यवस्थापन 'दीक्षा', शिक्षा असे गुरुकुलवास दोन
दीक्षा गुरुकुलवास आजीवन आदर्श गुरू शिष्याची करतो जडण घडण ।।२।।

ग्रंथ ते निर्ग्रंथ मार्गक्रमण आवश्यक ब्रह्मचर्यपालन ज्ञानप्राप्ति
गुरुकुलवासाचे प्रयोजन ब्रह्मचर्याशिवाय अशक्य ज्ञानाराधन ।।३।।

आदर्श शिक्षणप्रणालीची ही भारतीय ठेवण कालौघात गेले सारे बदलून
शिक्षणाचे झाले पाश्चात्यीकरण शिक्षण फक्त अर्थकारण ।।४।।

दीक्षा गुरुकुलवासात जेव्हा होते ब्रह्मचर्याचे शिथिलीकरण अहो !
कुशील ठरले पार्श्वस्थ श्रमण महावीरांनी मुनीस केले सतत सावधान
संपूर्ण ग्रंथात सांगितले पुन्हा पुन्हा स्त्रीवर्जन ब्रह्मचर्य व ज्ञानग्रहण
यातील संबंधाचे विज्ञान जाणती महावीर भगवान ।।५।।

(क) सामायिक

त्रस स्थावर जीवनिकाय राहिले विश्व व्यापून सुखदु:ख समान चेतन
सर्व आत्मवत् मानून करतो षट्जीवांचे यतन आणि समतेचे पालन ।।१।।

सर्वांना देतो अभयदान राहतो निर्भय होऊन
उपसर्गादि करतो सहन होते कषायांचे उपशमन ।।२।।

घेतो अचित्त जलपान आणि समभावाने भोजन नाही
गृहस्थ पात्रग्रहण नसे आसक्ती प्रलोभन ।।३।।

सावद्य योग पचक्खाण कृत कारित अनुमोदन
असे सामायिक यावत् जीवन जो करितो परिपालन
त्याचे उत्तम सामायिक जाण त्याचे निश्चित देवलोक गमन ।।४।।

दोघांनाही दिले मोक्षसाधन असो तो श्रावक वा श्रमण
सम्यक् सामायिकाचे उदाहरण आहे इतिहास प्रमाण ।।५।।

केले प्रत्यक्ष महावीरांनी वर्णन झाले पुणियाचे धन्य जीवन
आणि धन्य महावीर दर्शन ।।६।।

●●●

(१५) सूत्रकृतांग-लेखमाला : जैन जागृति मासिकपत्रिका
(लेखांक १)

'वीरत्थुई' के अन्तरंग में

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : सौ. चंदा समदडिया

जैन दर्शन में प्रत्यक्ष महावीर वाणी 'द्वादशांगी' में सूत्रकृतांग दूसरे स्थानपर है । दो श्रुतस्कन्धों में विभाजित इस अंग-आगम का प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीन अर्धमागधी का दुर्लभ नमुना माना जाता है । महावीर के समकालीन विविध दार्शनिक मतों का अर्थात् स्व-पर-सिद्धान्तों का उल्लेख एवं विवेचन सूत्रकृतांग में किया गया है । इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह अंग-आगम बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है ।

सूत्रकृतांग का छठा अध्ययन 'वीरस्तुति' है । भक्तामर-स्तोत्र, कल्याण मन्दिर-स्तोत्र की तरह यह स्तुति काव्य भी आद्य शब्द से अर्थात् 'पुच्छिसु णं' नामसे जाना जाता है । हर साहित्य-विधा की तरह स्तुति, स्तोत्र इस विधा का जन्मस्थान भी आगम में, आचार्य सुधर्मा द्वारा सर्वप्रथम विरचित 'वीरत्थुई' में मिलता है । 'वीर' शब्द यहाँ प्रधानतया भगवान महावीर वाचक है ।

जब ब्राह्मण या वैदिक परम्परा में महाहिंसात्मक यज्ञादि का प्रचुर मात्रा में प्रवचन था, ब्राह्मण वर्ण की मनमानी, धर्म के नामपर लोगों को सरे आम लूटना, इन सब बातों से मानव-समाज पीडित था । ऐसी परिस्थिति में भगवान महावीर ने सभी प्राणीमात्रों को शान्ति एवं सुकून देनेवाले अहिंसा एवं अनेकान्त धर्म की प्ररूपणा की । सदैव सत्य-प्रज्ञा से समीक्षा कर के जो धर्म कहा, जो वैचारिक

क्रान्ति की, उसकी गहरी छाप जन-मानसपर पडी । इन विचारों ने श्रमण, माहण, अन्यतीर्थी आदि सभी को भगवान महावीर की ओर आकृष्ट किया । अनायास ऐसा कल्याणकारी सत्यधर्म समझानेवाले इस महामानव को जानने की इच्छा इन सबको हुई ।

जम्बूस्वामी महावीर के द्वितीय पट्टधर थे । जिन्होंने भगवान महावीर को देखा या सुना नहीं था । उन्हें भी ऐसे युगपुरुष को जानने की जिज्ञासा थी ही, तो उन्होंने इन सभी जिज्ञासुओं की ओर से अपने गुरू आचार्य सुधर्मा से भगवान महावीर के बारे में पूछा । आचार्य सुधर्मा ही एक ऐसे अधिकारी व्यक्ति थे कि जो महावीर को यथातथ्य जानते थे । आचार्य सुधर्मा भगवान महावीर के पाँचवें गणधर एवं शिष्य कि जिन्होंने भगवान महावीर के पास दीक्षित होकर लगातार तीस वर्षतक उनके पादमूलों में बैठकर विविध अनुभवों को संजोया, ज्ञानकणों का अर्जन किया। भगवान महावीर की अध्यात्म साधना को नजदीकी से देखा था । केवलज्ञानी प्रभु महावीर की हर साँस से वाकिफ थे आचार्य सुधर्मा । इसलिए सम्पूर्ण महावीर-व्यक्ति-दर्शन केवल सुधर्मा ही यथाश्रुत और यथातथ्य करा सकते थे । यह सब ध्यान में लेकर प्रखर प्रज्ञा के धनी जम्बूस्वामी आचार्य सुधर्मा से भगवान महावीर के आत्मिक, आन्तरिक गुण-ज्ञान, दर्शन, शील आदि के बारे में पूछते हैं । महावीर के शरीरांगोपांग, माता-पिता, नगरी या पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में नहीं ।

यहाँ वीर-स्तुति में महावीर को णायसुय, णायपुत्र, कासव, वद्धमाण आदि कुल एवं गोत्र निर्देशक नामों से सम्बोधित किया है । 'महावीर' नामोल्लेख एक बार भी नहीं है । सम्भव है 'महावीर' का यह नामाभिधान उत्तरवर्ती आचार्यों ने किया हो ।

भगवान महावीर के ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुणों को जगत् के हर उत्तमोत्तम, सर्वश्रेष्ठ वस्तु या पदार्थ की उपमा से उपमित करने का प्रयास सुधर्माजी ने किया है । जिसकी एक प्रदीर्घ नामावली यहाँ मिलती है । जो आज भी कवियों द्वारा उपमाओं के लिए प्रयुक्त होती हैं । जैसे अपनी अपनी जातियों में सर्वश्रेष्ठ- ऐरावत हाथी, अरविन्द, गंगानदी, शाल्मली वृक्ष, नन्दनवन, इक्षुरस, अभयदान, ब्रह्मचर्य, तप आदि । आचार्य सुधर्मा की काव्य प्रतिभा से कभी एक एक गुण के लिए एक एक उपमा दी गई है, जैसे आन्धी-तूफानमें अविचल, अनेक देवताओं को भी प्रमुदित करनेवाले सुमेरु पर्वत की उपमा । जिससे जैन दर्शन के भूगोल एवं खगोल की भी जानकारी मिलती है । इन सारी उपमाओं से उपमित करनेपर भी अनन्त गुणों के धारक, भगवान महावीर अनुपमेय ही है क्यों कि महावीर शब्दातीत है ।

सह सान्निध्य से ब्राह्मण और श्रमण परम्परा एकदूसरे से कम ज्यादा प्रभावित होती रही है । इसका उदाहरण यहाँ मिलता है । तत्कालीन वैदिक समाज में इन्द्र देवता ज्यादा पूजी जाती थी । इन्द्र महोत्सव आदि त्यौहार भी मनाये जाते थे । शायद इसी के प्रभाव से वीर-स्तुति में इन्द्र देवता का जिक्र अनेक बार हुआ है । वैसे ही तत्कालीन समाज में प्रचलित यज्ञ सम्बन्धित वैरोचन अग्नि का भी जिक्र इसमें हुआ हैं ।

'वीरस्तुति' की अन्तिम गाथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि उसमें अनेक बातों का निर्देश है । आचार्य सुधर्माजी अन्तिम गाथा में कहते हैं, ''अरिहन्त द्वारा भाकित, युक्ति संगत, शब्द और अर्थ से शुद्ध धर्म को सुनकर श्रद्धा करनेवाले को शीघ्र ही मोक्षप्राप्ति या उच्च वैमानिक देवगति प्राप्त होती है ।'' इसमें सोच्चा

अर्थात् श्रुत्वा शब्द से जैन दर्शन की श्रुतज्ञान की मौखिक परम्परा सूचित होती है, जो सन्त सतियोंद्वारा आगम ज्ञानपर आधारित प्रवचनों के जरिए आज भी जीवित हैं ।

यह स्तुति स्तोत्रों की रचना का प्रवाह २६०० वर्ष बाद आज भी प्रवाहित हो रहा है । भक्ति-मार्ग में भक्ति, या आराधना करने का स्तुति-काव्य एक प्रमुख माध्यम है । भक्तिमार्ग पूरा हावी हो चुका है । इसलिए ऐसे स्तवनों की पठन, रटन होता है । जब कि आवश्यकता है उसके, आगमों के चिन्तन, मनन की ।

चाहे जो भी हो, पर इतना निश्चित है कि इस वीरस्तुति के माध्यमसे आनेवाली पीढियाँ भगवान महावीर से जरूर परिचित होंगी । आचार्य सुधर्मा की यह अनमोल देन है ।

●●●

(१६) सूत्रकृतांग–लेखमाला : जैन जागृति मासिकपत्रिका
(लेखांक २)
समवसरण : एक परिशीलन

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी
शब्दांकन : सौ. चंदा समदडिया

आगम युग का प्रतिनिधित्व करनेवाले 'सूत्रकृतांग' अंग आगम में स्व–पर सिद्धान्तों का उल्लेख एवं विवेचन किया गया है । इस दृष्टि से 'सूत्रकृतांग' का ऐतिहासिक महत्त्व है । बिना किसी कलह या वितंडवाद के स्व–सिद्धान्त मंडन तथा अन्य सिद्धान्तों का तर्कयुक्त खंडन इसमें मिलता है ।

'समवसरण' की रूढ मान्यता इस प्रकार है । तीर्थंकरों के उपदेश देने का इन्द्रादि देवकृत अतिवैभवपूर्ण मंच, या स्थान । यह स्वर्ण–रजत धातुओं से बना, मौल्यवान मणिरत्नों से सुशोभित, स्फटिक सिंहासनादि अष्ट महाप्रतिहार्यों से युक्त, बारह परिषद जैसे श्रोतृवर्ग से मण्डित होता है । जहाँ सभी श्रोता आपसी वैरभाव भूलकर तीर्थंकरों की अमृतवाणी का रसपान करते हैं । ऐसा अद्‌भुत रम्य नजारा 'समवसरण' कहलाता है ।

'सूत्रकृतांग' के 'समवसरण' अध्ययन में 'समवसरण' शब्द का महावीरकालीन प्रचलित मूल अर्थ इस प्रकार मिलता है । जहाँ वादसंगम होता था, या विचारों के आदान–प्रदान के लिए इकट्ठा आये हुए लोगों की सभा को 'समवसरण' कहते थे। अनेक विभिन्न दार्शनिक प्रवक्ता एकत्रित होकर अपने अपने दृष्टियों की तत्त्वचर्चा या धर्मचर्चा जहाँ करते थे वह स्थान 'समवसरण' कहलाता था । इतिहास के पन्ने खोलकर अगर हम देखते हैं तो भगवती–सूत्र या कल्पसूत्र में वर्णित महावीर–जीवन चरित्र में इन्द्रभूति, अग्निभूति आदि ग्यारह वेदविद् ब्राह्मण जो अन्य कितने ही

शास्त्रों के जानकार, एवं प्रकाण्ड पण्डित थे, वे 'समवसरण' में अपनी अपनी दार्शनिक जिज्ञासाएँ, आशंकाएँ लेकर महावीर के पास गये और महावीर से उन जिज्ञासाओं का समाधान पाया, ऐसा वर्णन मिलता है । इस तरह 'समवसरण' का 'दार्शनिक चर्चास्थान' यही अर्थ ज्यादा संयुक्तिक लगता है जो कालौघ में बदल गया है । इस तरह महावीरकालीन 'दार्शनिक चर्चा'ओं के लिए सुरक्षित एवं सुदृढ समाजव्यवस्था का परिचय यहाँ मिलता है । इस 'समवसरण' अध्ययन में महावीर के समकालीन सभी दार्शनिक मतों का लेखाजोखा मिलता है, जो प्राचीन भारतीय दार्शनिक इतिहास को प्रकाशित करता है । आत्मा, विश्वस्वरूप, जीवसृष्टि, मोक्ष कल्पना, आचरण पद्धति, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म आदि अनेक मुद्दोंपर थोडी थोडी मतभिन्नतावाले कितनेही 'वाद' तब प्रचलित थे । 'सूत्रकृतांग' के प्रथम 'समय' अध्ययन में ऐसे अनेक वादों का उल्लेख मिलता है । **उदा.**– चार्वाक, आजीवक–नियतिवाद, बौद्ध – क्षणिकवाद, शून्यवाद, अकारकवाद, आत्मषष्ठवाद, नित्यवाद, सांख्य, शैव आदि । 'सूत्रकृतांग' के टीकाग्रन्थ निर्युक्ति एवं चूर्णि में इन सब वादों के पुरस्कर्ताओं के नाम भी मिलते हैं, जो इन सबका ऐतिहासिकता का प्रमाण है।

'समवसरण' अध्ययन में इन सारे वादों को मुख्य चारही विभागों में विभाजित किया है । क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद यह चार सिद्धान्त हैं, जिन्हें अन्यतीर्थिक पृथक्–पृथक् निरूपण करते हैं । प्रथम हम 'अज्ञानवाद' क्या कहता है यह देखते है ।

१) **अज्ञानवाद :** अज्ञानवादी 'अज्ञान' को ही श्रेयस्कर, कल्याणकारी मानते है । उनका कहना है, ''अतिविशाल इस सृष्टि का पूरा ज्ञान तो हम प्राप्त नहीं कर सकते । अच्छा, बुरा समझकर भी पूरी तरह अच्छा भी नहीं बन

सकतें, तो फिर उस ज्ञान का क्या फायदा ? इसलिए अज्ञानही अच्छा है।'' ऐसा कहनेवाले अज्ञानवादी वास्तव में मिथ्यावादी है, क्योंकि वे स्वयं तत्त्व से अनभिज्ञ होते हुए भी, अपने आपको ज्ञानी मानकर दूसरों को उपदेश देते हैं। वे यह नहीं जानते कि 'अज्ञानवाद' का परिचय कराना, या 'अज्ञानवाद' की श्रेष्ठता बताना, अज्ञानवाद का ढाँचा बनाना, यह सब 'ज्ञान' से ही सम्भव है । इसलिए 'अज्ञान' को कल्याण का कारण मानना केवल असम्बद्ध है और संयुक्तिक, या तर्कशुद्ध भी नहीं लगता ।

२) **विनयवाद :** विनयवादी, वस्तुस्वरूप न समझते हुए, सत्य, असत्य, अच्छा, बुरा इनकी परीक्षा किये बिना ही 'केवल विनय से मोक्षप्राप्ति होती है' ऐसा मानते हैं। 'विनयवाद' से कुछ मिलता जुलता संदर्भ, दानामा और प्राणामा प्रव्रज्या के वर्णन में भगवतीसूत्र में मिलता है । 'दानामा प्रव्रज्या' अर्थात् देवता, राजा, माता, पिता आदि सभी का मन, वचन, काया से दान देकर विनय करना होता है। 'प्राणामा प्रव्रज्या' अर्थात् सामने जो भी दिखे, चाहे वह मनुष्य हो या पशु सभी को विनयपूर्वक प्रणाम करना होता है । जैन दर्शन में विनय को 'धर्म का मूल' एवं 'आभ्यंतर तप' कहा है। कोई सैद्धान्तिक आधार या तत्त्वाधार न देखते हुए केवल विनय करना यह या तो केवल मूढता है, या फिर ऐसे विनय में शरणागति का भाव है जिसे जैन दर्शन में कोई स्थान नहीं है । जैन दर्शन का कहना है कि शरणागति से कर्मबन्ध क्षीण नहीं होते, कर्मबन्ध से मुक्ति पाने के लिए पुरुषार्थ करने की

आवश्यकता होती है । अपने सुखदु:खों का कर्ता भी आत्मा स्वयं है और भोक्ता भी स्वयं ही है । इसलिए केवल विनयवाद से मोक्षप्राप्ति मानना, मिथ्या है ।

३) **अक्रियावाद :** अक्रियावाद के बारे में चूर्णिकार कहते हैं कि, लोकायतिक-चार्वाक, बौद्ध, सांख्य आदि अनात्मवादीही अक्रियावादी है । अक्रियावादियों का कहना है कि ''आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है, तो कोई क्रिया भी नहीं हो सकती और क्रियाजनित कर्मबन्ध भी नहीं हो सकते ।'' इस तरह अक्रियावादी कर्मबन्ध के भय से क्रिया का ही निषेध करते हैं । आक्षेप लेने पर एक पक्ष कहता है 'क्रिया है पर चय संचय नहीं है ।' जबकी दूसरा पक्ष कहता है 'क्रिया है, कर्मबन्ध भी है और चय भी है ।' इस तरह दोनों पक्ष में एकवाक्यता भी नहीं है, परस्परविरोधी वाक्य बोलकर वे लोगों को ठगते हैं । सांख्य दर्शन आत्मा याने पुरुष को अक्रिय मानता है और प्रकृति को क्रियाशील मानता है । बौद्ध दर्शन में आत्मा को 'क्षणिक' मानते हुए भी गौतम बुद्ध की पूर्वजन्मधारित जातककथाएँ सत्य मानते है । 'सूत्रकृतांग' में अक्रियावादियों को अन्धे मनुष्य की उपमा दी है, जो हाथ में दीपक होते हुए भी नेत्रविहीन होने से पदार्थों को नहीं देख सकता । वैसे अक्रियावादी प्रज्ञाविहीन होने के कारण विद्यमान पदार्थों को भी नहीं देख सकते । जैन दर्शन में आत्मा को गुण और पर्याय से युक्त द्रव्य माना है । इसलिए गुण की अपेक्षा से आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व माना है और पर्याय की

अपेक्षा से समयवर्ती या क्षणिक भी माना है । जीव और पुद्गल दोनों को जैन दर्शन क्रियाशील मानता है । इसलिए कर्मसिद्धान्त जैन दर्शन की रीढ की हड्डी है, मेरुदण्ड है ।

४) **क्रियावाद :** जो आत्मतत्त्व, गति, आगति, आस्रव, संवर, निर्जरा, कर्मसिद्धान्त, लोकस्वरूप आदि सभी जानते हैं । लेकिन ज्ञान का निषेध करके केवल क्रिया से ही स्वर्ग या मोक्षप्राप्ति मानते हैं उन्हें शास्त्रकार ने 'क्रियावादी' कहा है । जैन दर्शन का 'प्राण' जो 'अहिंसा सिद्धान्त' है, इस सिद्धान्त के परिपालनार्थ जो मन-वचन-काया इन योगों का अर्थात् क्रिया का निषेध किया गया है, इसलिए जैन या श्रमण परम्परा निवृत्तिप्रधान है ऐसा कहा जाता है । लेकिन यहाँ सूत्रकृतांग में 'अहिंसक चारित्रपालन' को भी 'क्रिया' कहा है । चारित्रपालन के अन्तर्गत जो भी जप, तप, स्वाध्याय, सामायिक आदि किया जाता है उन सबको 'क्रिया' ही कहा गया है । इस दृष्टि से जैन दर्शन को ही यहाँ 'क्रियावादी' माना है । जैन सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान और क्रिया दोनों के समन्वय से ही स्वर्ग या मोक्षप्राप्ति मानी गयी है । 'संयम' आदि मोक्षप्रद क्रियाओं को जैन दर्शन में क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और विनयवादियों के ३२ भेद बताये गये हैं । ये सब मिलकर ३६३ मत होते हैं । इन सबका 'समवसरण' अध्ययन में निराकरण किया गया है । महावीर के प्रबल प्रतिस्पर्धियों में प्रमुख थे बौद्ध और आजीवक । अक्रियावादी बौद्धों के 'क्षणिकवाद' और 'शून्यवाद' तथा 'सर्वं दुक्खं' इन मतों का निराकरण करते हुए महावीर कहते हैं, ''सयंकडं णन्नकडं च दुक्खं, आहंसु विज्जाचरणं

पमोक्खं ।'' अर्थात् हरएक को सुखदु:ख प्राप्ति स्व-कर्मकृत होती है । अन्य के कर्मों का फल नहीं भोगना पडता है । भ. महावीर कहते हैं कि ''मोक्षप्राप्ति ज्ञान और क्रिया दोनों से होती है, अकेली क्रिया से या अकेले ज्ञान से मोक्षप्राप्ति नहीं हो सकती ।''

'समवसरण' का 'सूत्रकृतांग' में प्रतिबिम्बित अर्थ जो 'वाद-संगम' है उसका पूरा चित्रण ही हमारे सामने आता है । इसमें तत्कालीन करीब करीब सभी वादों का या मतों का यहाँ जिक्र किया गया है । महावीर के बाद भी कई नये दर्शनों का निर्माण हुआ है जैसे ईसाई, ईस्लाम, सिक्ख आदि । फिर भी आज के विज्ञानयुग में भी जैन दर्शन का स्थान अक्षुण्ण, अबाधित है । अपनी तर्कशुद्धता, सैद्धान्तिकीकरण और समन्वयता इन गुणों के कारण जैन दर्शन ने पूरे विश्व में अपना अलग स्थान प्राप्त कर लिया है ।

'समवसरण' का मूल अर्थ 'तत्त्वचर्चा' या 'धर्मचर्चा' है । इससे 'समवसरण'सम्बन्धी काल्पनिक, अद्भुत, रम्य, भ्रान्त धारणा का निराकरण होता है और वास्तववादी, तत्त्वाधार की मजबूत नींवपर खडा, तर्कशुद्ध जैन दर्शन को ऐसे अद्भुतरम्यता के मुलामें की जरूरत ही नहीं है ।

●●●

(१७) सूत्रकृतांग–लेखमाला : जैन जागृति मासिकपत्रिका

(लेखांक ३)

सूत्रकृतांग में श्रुत–धर्म

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी
शब्दांकन : सौ. चंदा समदडिया

भगवान महावीर निर्वाण के पश्चात् आचार्य सुधर्मा स्वामी के पास आर्य जम्बू स्वामीने 'संयम' ग्रहण किया । तत्कालीन समाज में भ. महावीर के अनुयायियों की तरह बौद्ध, सांख्य, आजीवक आदि श्रमण परम्परानुयायी और ब्राह्मण परम्परानुयायी कई भिक्षु काफी तादात में यत्र–तत्र नजर आते थे । हिंसा–प्रधान वैदिक धर्म की जनमानस पर गहरी छाप थी । फिर भी सूक्ष्म अहिंसा सिद्धान्त पर आधारित सबसे अलग जीवनशैली, वेशभूषा, खानपान, रहनसहन आदि के कारण जैन साधु–साध्वियों की अपनी अलग पहचान थी । अनायास आम समाज को तथा अन्य तीर्थियों को यह जिज्ञासा होती थी कि 'केशलुंचन, पैदल विहार, उग्र तपस्या आदि अत्यन्त कठोर आचरणवाला ऐसा कौनसा धर्म और मार्ग इनके धर्मनेता ने बताया है ?' यही जिज्ञासा 'सूत्रकृतांग' के 'धर्म और मार्ग' अध्ययन में जम्बू स्वामी ने आ. सुधर्मा स्वामी के पास प्रकट की है ।

आ. सुधर्मा स्वामी ने योग्य शिष्य और योग्य अवसर देखकर भ. महावीर द्वारा प्ररूपित चक्षुर्वैसत्यम् धर्म का स्वरूप समझाया । सुधर्मा स्वामी कहते हैं ''केवलज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतरागी पुरुष सम्पूर्ण वस्तु स्वरूप को यथातथ्य देखते हैं, जानते हैं और उसी सत्यस्वरूप की प्ररूपणा करते हैं । ऐसा सत्य प्रतीति पर आधारित, सर्वोत्तम, शुद्ध धर्म बहुत दुर्लभ है । वह यत्र तत्र नहीं मिलता ।''

इससे स्पष्ट होता है कि अन्यमतावलम्बी लोग केवलज्ञान या सर्वज्ञता को नहीं मानते थे । ऋजुता की ओर ले जानेवाला, माया प्रपंच से रहित अत्यन्त सरल ऋजु धर्म यहाँ भ. महावीर ने बताया है ।

'धर्म' का स्वरूप समझने के लिए प्रत्यक्षदर्शी महावीर का बताया हुआ वस्तुस्वरूप समझना जरूरी है । 'मार्ग' अध्ययन की गाथा क्र. ७/८ के अनुसार जीव स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है – सृष्टि में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय यह पाँच 'स्थावर' या एकेन्द्रिय जीव है और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय यह चार 'त्रस' ऐसे षट्जीवनिकाय सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हैं । इनके अतिरिक्त संसार में अन्य जीव–निकाय या जीव नहीं है । यह 'स्थावर जीव' संकल्पना केवल जैन दर्शन की ही देन है । अन्य दर्शनों ने पृथ्वी, अप् आदि पाँच को जड, प्रकृति–रूप पंचमहाभूत माना हैं ।

आगे सुधर्मास्वामी महावीर प्ररूपित पृथ्वीकायिक इत्यादि का स्वरूप बतलाते हैं । पृथ्वी जिनकी काया है, ऐसे पृथक पृथक अस्तित्ववाले असंख्यात जीवों का पिण्ड पृथ्वीकायिक जीव कहलाते हैं । इसके अलावा पृथ्वी के आश्रित असंख्यात त्रसादि जीव भी होते हैं । ऐसा ही अन्य चार स्थावर, एकेन्द्रिय के बारे में जानना चाहिए । ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' उक्ति के अनुसार सभी जीवों का जीवन एकदूसरे पर निर्भर होता है । सभी जीवों की चेतना एवं सुखदुःखानुभूति समान होती है । सभी को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है । सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता ।

अब कर्मबन्ध का स्वरूप बताते हुए सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि 'कोई किसी भी जाति या कुल में उत्पन्न हुआ हो, जब तक वह आरम्भ (हिंसा), परिग्रह का

त्याग नहीं करता तब तक उसे कर्माश्रव होता है और जब तक कर्माश्रव होता है तब तक वह अपने दु:खों का अन्त नहीं करता ।' इसलिए बुद्धिमान पुरुष को इन षट्जीवनिकाय जीवों को हर प्रकार से, सब युक्तियों से जानकर किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए । यही सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र है । 'मार्ग' अध्ययन में गाथा क्र. १०, ११ में 'धर्म' का सार इस प्रकार बताया है – ''किसी भी जीव की हिंसा मन-वचन-काया से नहीं करना यह 'अहिंसा-सिद्धान्त' जिसने जान लिया उसने सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का सार पा लिया ।'' और यही मोक्ष प्राप्ति है, यही 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' है । इस तरह भ. महावीर ने अखिल मानव जाति के आत्म कल्याण का मार्ग एवं धर्म बताया ।

इस धर्मपालन का अधिकारी सिर्फ गर्भज, कर्मभूमिज मनुष्य ही है । 'आदानीय' अध्ययन में गाथा क्र. १७, १८ के अनुसार चारों गतियों में मनुष्यगति प्राप्त होना दुर्लभ है । मनुष्यभव मिलकर भी सम्यक्त्वप्राप्ति, उसके योग्य अंत:करण-परिणति, धर्मप्राप्ति के अनुकूल लेश्याप्राप्ति, ये सारी बातें उत्तरोत्तर दुर्लभ है । यह सब जानकर कई ज्ञानी पुरुष, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञानपूर्वक चारित्र पालन या संयम पालन कर के पूर्व संचित कर्मों का सामना कर के उन्हें पराजित करते हैं और नवीन कर्मबन्ध नहीं करते, तब आत्मा सर्वथा निष्कर्म होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है ।

'आदानीय' अध्ययन में गाथा क्र. २०-२२ के अनुसार परम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त, स्व-स्वरूप प्राप्त आत्मा मोक्षप्राप्ति के बाद फिर से जन्म नहीं लेती । क्योंकि जन्म लेने का या संसार का कर्मरूप कारण ही पूर्णत: नष्ट होने से जन्म-मरणरूप संसार भी नष्ट हो जाता है । जब कि 'आदानीय' अध्ययन में गाथा

क्र. ७ में बताया है कि, वैदिक, आजीवक आदि अन्य मतावलंबियों का मानना है, कि ''कुछ कारण विशेषसे या अपने धर्म में हानि होती देख 'धर्मसंस्थापनार्थाय' ऐसी मुक्त आत्मा फिर से जन्म लेती हैं । उन्हें अवतार कहते हैं ।'' इस तरह ''धुणे पुव्वकडं कम्मं, णवं वाऽवि ण कुव्वति ।'' ऐसे पूर्वसंचित द्रव्य कर्म से पुन: भावकर्म और भाव कर्म से पुन: द्रव्यकर्म यह चक्र रूक जाता है । यही 'मोक्षप्राप्ति' है ।

इस प्रकार के संयमपालन को महावीर ने 'शल्यकर्तन' कहा है । भवरोग से ग्रसित सभी प्राणियों को रोगमुक्ति के लिए महावीर जैसे कुशल वैद्य ने यह 'शल्यकर्तन' अर्थात् संयम मार्ग का उपदेश दिया है । यही श्रुत-चारित्र धर्म है, जिसमें कषाय, विषयसेवन, कामभोगासक्ति, सुखाभिलाषा, प्रमाद इत्यादि का पूरा परहेज करना पडता है ।

'सूत्रकृतांग' में चारित्र धर्म-पालन का भी पूरा ब्यौरेवार वर्णन मिलता है, जिसके आधार से उत्तरवर्ति आचार्यों ने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन जैसे साधु-साध्वियों के आचार-प्रधान ग्रन्थों की रचना की होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

भ. महावीर ने अपनी सत्यप्रज्ञा से समीक्षा करके हमें जो स्व-पर कल्याणकारी अहिंसामूलक धर्म एवं मार्गरूपी रत्न सौंपे हैं, वे आज भी सूत्रकृतांगादि प्राचीन आगमों के रत्न करंडकों में सुरक्षित है । इस हमारी अनमोल धरोहर को हमें हृदयंगम करना चाहिए । यथाशक्ति हमें यह जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। तभी हम महावीर प्ररूपित धर्म एवं मार्ग के प्रति सच्चा न्याय कर पायेंगे।

●●●

(१८) सूत्रकृतांग–लेखमाला : जैन जागृति मासिकपत्रिका

(लेखांक ४)

सूत्रकृतांग में 'गुरुकुलवास' एक आदर्श शिक्षा–प्रणाली

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी
शब्दांकन : सौ. चंदा समदडिया

प्राय: सभी जैन दर्शनग्रन्थों में श्रुतधर्म पर आधारित अहिंसात्मक आचारप्रणाली का विशद वर्णन मिलता है । सूत्रकृतांग भी इसका अपवाद नहीं है । इसके अलावा सूत्रकृतांग का 'ग्रन्थ' अध्ययन, आदर्श शिक्षाप्रणाली का उत्तम नमूना है । इस दृष्टि से सूत्रकृतांग का विशेष महत्त्व है ।

अध्ययन का शीर्षक 'ग्रन्थ', यह जैन पारिभाषिक शब्द, ममत्व या परिग्रह इसी अर्थ से प्रयुक्त किया गया है । विद्या प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले हर विद्यार्थी को ग्रन्थ से निर्ग्रन्थ या ग्रन्थी बनाने की प्रक्रिया का विशद वर्णन यहाँ किया गया है ।

गाथा क्र. १ में 'गुरुकुलवास' के लिए 'ब्रह्मचर्य' शब्द प्रयुक्त किया है । 'ब्रह्मचर्य' शब्द के तीन अर्थ होते है । भारतीय सभी दर्शनों में ज्ञान प्राप्तिके लिए 'ब्रह्मचर्य पालन' अत्यन्त अनिवार्य माना गया है । वैदिक परम्परा में 'गुरुकुलवास' की अवस्था को ही 'ब्रह्मचर्याश्रम' कहा है ।

'सूत्रकृतांग' के अनुसार गुरुकुलवास दो प्रकार का है –

१) दीक्षा अर्थात् 'आजीवन गुरुकुलवास' ।

२) शिक्षाप्राप्ति हेतु कुछ समय के लिए गुरुकुलवास ।

इसलिए गुरु या आचार्य भी दो प्रकार के कहे हैं – १) दीक्षा दाता २) शिक्षा दाता अर्थात् शास्त्र पाठ की वाचना देकर सामाचारी एवं परम्पराओं का ज्ञान

सिखानेवाले गुरु । ऐसे श्रुत पारगामी आचार्य ज्ञान परम्परावाहक भावी शिष्य को बाह्याभ्यन्तर 'ग्रन्थ' का स्वरूप समझाकर ग्रन्थियों को क्षीण करने का अभ्यास कराते हैं । जिससे शिष्य को पूरी तरह से ग्रन्थमुक्त होकर निर्ग्रन्थ अवस्था तक पहुँचाया जाता है । इस तरह शिष्य को मोक्षाधिकारी बनाया जाता है । ऐसे कुशल आचार्य ओजस्वी, तेजस्वी, गीतार्थ, पारगामी इ. गुणों के धारक होते हैं ।

गुरुकुलवास में रहनेवाले शिष्य के लिए कौनसे आवश्यक गुण या योग्यताएँ होना जरूरी हैं उनका भी यहाँ विस्तृत वर्णन है । 'गुरुकुलवास' में जाति वर्ण की उच्चनीचता भेदभाव से रहित अनेक विद्यार्थियों का एक संघ होता है और संघ अनुशासन से ही चलता है । इसलिए (गाथा क्र. ७ से १२ तक) कठोर अनुशासनपालन के लिए आवश्यक होती है 'सहनशीलता', इसलिए सहनशीलता बढाने का उपदेश दिया है । इसके अलावा शिष्य को विनयशील, इच्छारहित, चतुर एवं अप्रमत्त होना जरूरी है । साथ में शिष्य को आज्ञाकारी भी होना चाहिए । सहनशीलता के अभाव में या वृथा आत्मविश्वास के कारण अपरिपक्व अवस्था में गुरुकुलवास को छोडनेवाले शिष्य की हालत 'नवजात, शक्तिहीन पक्षी शिशु के जैसी, जिसे ढंक आदि प्रबल पक्षी मार डालते हैं ?' वैसी ही होती है ।

गाथा क्र. १३ से १८ में गुरुकुलवास में रहनेका फल बताया है, शिष्य को ज्ञानप्राप्ती, धर्म, कर्तव्य का बोध होता है, सहनशीलता, अप्रमत्तता आदि गुणों का वह अभ्यासी होता है । मोहरहित, संयमित जीवन जीने की कला सिखता है । आचरण में निपुणता के साथ साथ नवशालिनी प्रतिभा का पूरा विकास होता है और इस तरह शिष्य सम्पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है और इसी में 'गरु ' अपने जीवन की 'इति कर्तव्यता मानते हैं ।'

'ग्रन्थ' अध्ययन में अन्तिम १० गाथाओं में गुरु की ज्ञानपरम्परा को अग्रेसर करनेवाला शिष्य कैसे तैयार किया जाता है इसका अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में विवेचन किया है । आदर्श प्रवक्ता के लक्षण एवं आदर्श गुरु के निकष भी यहाँ बताये है, जो सार्वकालिक, मार्गदर्शक एवं अनुकरणीय है ।

जीवनोपयोगी सभी विषयों में एवं आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक इ. सभी विषयों में निष्णात 'गुरु' ही शिष्य के लिए एक आदर्श शिक्षा-संस्था होती है । इसलिए गुरु के लिए भी एक कसौटी ही होती है । गुरु को हरपल सावधान रहकर सिद्धांतोचित व्यवहार ही करना होता है । इसके अलावा गुरु पारदर्शी हो, कथनी-करनी में समान हो । तथा शिष्य के हर शंका का समाधान, संशोधन करके, सोच-विचार करके ही देना चाहिए । कालानुरूप हर विषय की जानकारी गुरु को होनी चाहिए । गुरु बहुश्रुत होना चाहिए । इस तरह गुरु कैसा होना चाहिए यह बताकर अब प्रवक्ता की भाषा कैसी हो यह भी यहाँ बताया है ।

ज्ञानदान का माध्यम है भाषा । इसलिए गुरु को भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए । उच्चारण शुद्ध हो, शास्त्रार्थ को छिपाना नहीं चाहिए । शास्त्र से अधिक या विपरीत प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए । गुरु को अहंकार या दूसरों का परिहास नहीं करना चाहिए । द्रव्य, क्षेत्र, भाव के अनुसार स्याद्वाद से ही बोलना चाहिए । सत्य एवं व्यवहार भाषा का प्रयोग करें । विद्यार्थियों की क्षमता, पात्रता इ. ध्यान में लेकर उनकी मति के अनुसार दृष्टांत देकर समझाना चाहिए । वक्तृत्व के दौरान विषय के संक्षेप, विस्तार का भी विवेक रखना चाहिए । गुरु संतुष्ट होकर किसी की भौतिक उन्नति हेतु आशीर्वाद न दे या क्रोध में आकर किसी के लिए अपशब्द भी न कहें । वैसे भी जैन दर्शनानुसार कर्मसिद्धान्त के फलविपाक में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता ।

इन सब निकषों से विद्यादान करते करते गुरू या आचार्य को स्वयं भी आत्मविकास की साधना करनी चाहिए । आदर्श गुरु या शिक्षक के निकष जो भगवान महावीर ने आजसे २६०० वर्ष पूर्व बताये हैं, ये सारे निकष आज भी आदर्श शिक्षक या उत्कृष्ट प्रवक्ता के लिए ज्यों कि त्यों लागू होते हैं । भाषा के माध्यम से चलनेवाले हर क्षेत्र में जैसे स्कूल या महाविद्यालय, मिडिया, दूरदर्शन, रेडिओ आदि सबके लिए ये उपयुक्त बातें बहुत मायने रखती हैं । अगर 'ग्रन्थ' अध्ययन में बताये हुए इन अध्ययनक्षेत्र के निकषों पर अंमल किया जाय तो, 'आदर्श शिक्षा व्यवस्था' का यह उत्तम उदाहरण हम पूरे विश्व के लिए वरदान साबित होगा जिसकी आज निहायत जरूरत है ।

●●●

.२.

बहारदार वक्तृत्वस्पर्धा (वृत्तांत)

– डॉ. कौमुदी बलदोटा

१९७६ साली पुणे विद्यापीठात स्थापन झालेल्या जैन अध्यासनाने आपल्या उद्दिष्टांची नोंद अत्यंत व्यवस्थितपणे करून ठेवली आहे. (१) जैनविद्येच्या ५-६ प्रमुख अंगांनी संशोधन (२) तत्संबंधी उद्दिष्टानुसारी लहान-मोठी प्रकाशने (३) जैनविद्येत गती असणाऱ्यांना अभ्यासवृत्ती (४) समाजप्रबोधनासाठी व्याख्यानमाला अगर लेखमाला (५) प्रतिवर्षी सर्व जैन समाजासाठी एखाद्या स्पर्धेचे आयोजन.

जैन अध्यासनातर्फे २००७ पासून आयोजित केल्या गेलेल्या स्पर्धांपैकी २० ऑगस्ट २०११ ला आयोजित केलेली वक्तृत्वस्पर्धा ही पाचवी स्पर्धा होती. सन्मति-तीर्थ संस्थेच्या शिक्षिका आणि 'जैन जागृति' मासिक पत्रिका यांच्यामार्फत स्पर्धेचा विषय जैन समाजापर्यंत पोहोचला. श्री. श्रेणिक अन्नदाते यांच्या 'तीर्थंकर' मासिकातही स्पर्धेविषयीचा मजकूर पाठवला होता. स्पर्धेचा विषय होता –

'गर्व से कहो हम 'जैन' हैं ।'

वयोमर्यादा १५ ते ५० अशी होती. त्याच त्याच लोकांनी भाग न घेता, युवक-युवती पुढे याव्यात, अशी अपेक्षा होती. एकूण २४ स्पर्धकांनी नावनोंदणी केली. प्रत्यक्ष स्पर्धेसाठी २० स्पर्धक आले. अतिशय उत्साहवर्धक गोष्ट म्हणजे स्पर्धकांचे सरासरी वय २५ ते ३० च्या दरम्यान होते. महिला स्पर्धक १५ तर पुरुष स्पर्धक ५ होते.

स्पर्धा पुणे विद्यापीठातील तत्त्वज्ञान विभागात आयोजित करण्यात आली होती. सर्व युवक-युवती स्पर्धेआधी १५ मिनिटे येऊन उपस्थित होते. त्यांनी जैन

अध्यासनाने प्रकाशित केलेली प्रकाशने उत्सुकतेने पाहिली. नंतर शिस्तबद्धतेने ते वर्गकक्षात गेले. वक्तृत्वासाठी प्रत्येकाला आठ मिनिटे देण्यात आली. निम्मे स्पर्धक मराठीत तर निम्मे हिंदी-इंग्लिश (मिश्र) भाषेत बोलले. वातावरण उत्साही, चेहरे अतिशय प्रफुल्लित होते.

पहिल्या व्याख्यानकक्षात सुप्रसिद्ध विचारवंत डॉ. सदानंद मोरे यांनी दहा स्पर्धकांचे काळजीपूर्वक परीक्षण केले. महत्त्वाच्या मुद्यांना सुहास्य वदनाने दाद देऊन स्पर्धकांचा उत्साह वाढविला. दुसऱ्या व्याख्यानकक्षात तत्त्वज्ञान विभागातील प्रपाठक डॉ. लता छत्रे यांनी दहा स्पर्धकांच्या वक्तृत्वांचे मूल्यांकन केले. डॉ. छत्रे यांचा वेदांत, बौद्ध धर्म आणि स्त्रीवादी चळवळींचा व्यासंग आहे.

स्पर्धेनंतर सन्माननीय परीक्षकांनी अर्धा तास एकत्रित विचारविनिमय करून एकूण पाच नावे पारितोषिक-प्राप्त ठरविली. जैन अध्यासनाच्या बजेटमध्ये जेवढी आर्थिक व्यवस्था होती त्याप्रमाणे पुढील बक्षिसे दिली —

प्रथम क्रमांक (विभागून) अनुपमा जैन; विनीता कोठारी
(प्रत्येकी ७५० रु.)

द्वितीय क्रमांक (विभागून) सुवर्णा सरनोत; मेघ डुंगरवाल
(प्रत्येकी ६०० रु.)

तृतीय क्रमांक संगीता नहाटा (५०० रु.)

कॉफीपानानंतर लगेचच परीक्षकांच्या हस्ते पारितोषिक वितरण समारंभ झाला. यथायोग्य पारितोषिके आणि सर्वांना 'पार्टिसिपेशन सर्टिफिकेटस्' आणि जैन कथांसग्रह भेट देण्यात आला. डॉ. नलिनी जोशी यांनी सुमारे २० मिनिटे समारोपाचा अनौपचारिक सुसंवाद साधला.

त्या म्हणाल्या, ''सर्वधर्मसमभावाच्या या जमान्यात 'गर्व से कहो हम जैन हैं' – या उद्‌गारांचा वस्तुत: एक वेगळाच अन्वयार्थ लावणे आपल्याकडून अपेक्षित होते. जैन धर्माची उत्कृष्टता, मौलिकता, प्राचीनता, निरीश्वरता, गुणपूजा, अहिंसा-अनेकांत-स्याद्‌वाद-शाकाहार-अपरिग्रह – या सर्वांचा फक्त उदोउदो करीत रहाणे हे या वक्तृत्वातून अपेक्षित नव्हते. जैनविद्या (जैनॉलॉजी) ही एक सक्षम ज्ञानशाखा म्हणून जगभरातील विद्यापीठांमध्ये उदयोन्मुख होते आहे. भारतीय संस्कृतीच्या वैभवशाली परंपरेत जैनांनी केलेले विविधांगी योगदान अधोरेखित करणे हे अत्यंत निकडीचे आहे. एकतेचा अभाव, कर्मकांड, अवडंबर, संपत्तीचे प्रदर्शन, आर्थिक घोटाळ्यातील सहभाग, स्व-श्रेष्ठतावादाचा दुरभिमान – या आणि अशा अनेक मुद्यांवर अंतर्मुख होऊन केलेले चिंतनही अपेक्षित आहे. जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान, मंदिरनिर्माण इ. कला – यांविषयी प्रत्येक जैन युवक-युवतीने प्रमाणित (ऑथेंटिक) माहिती मिळविण्यासाठी सजग राहिले पाहिजे. आपली बलस्थाने कायम राखून ती जैनेतरांसमोर अधिकारवाणीने मांडता आली पाहिजेत. मूळ गाभ्याला धक्का न लावता वेळोवेळी सामाजिक परिवर्तनांनाही सामोरे गेले पाहिजे.''

डॉ. नलिनी जोशी अखेरीस म्हणाल्या, ''माझ्या युवक बंधूभगिनींनो, आज आपण व्यक्त केलेल्या विचारांमध्ये परंपरेचा सार्थ अभिमान आणि अंतर्मुखतेने परिवर्तनाला सामोरे जाण्याची तयारी – या दोन्ही गोष्टी आपण अतिशय समतोलपणे मांडल्यात. आपले मन:पूर्वक अभिनंदन ! जैन अध्यासनाच्या माध्यमातून आपण सर्व मिळून राष्ट्रउभारणीच्या कार्यात आपला खारीचा वाटा उचलू या. धन्यवाद परंतु 'पुनरागमनाय च ।'''

●●●

.३.

जैन अध्यासन : भक्तामरस्तोत्र-अध्ययन – उपक्रम

– डॉ. नलिनी जोशी

शुक्रवार २४ जून रोजी कोथरूड येथील श्री. अजित मुथा यांच्या निवासस्थानी भक्तामरस्तोत्राच्या समग्र अध्ययनाच्या उपक्रमास आरंभ झाला. आत्तापर्यंत जैनॉलॉजीच्या उपक्रमात सामील न झालेल्या नवीन जैन स्त्री-पुरुषांनी यात भाग घ्यावा, म्हणून हा उपक्रम कोथरूडला घेण्यात आला. शुक्रवार, १६ सप्टेंबर रोजी उपक्रमाची सांगता झाली. श्री. व सौ. मुथा यांच्याबरोबरच स्वानंद महिला मंडळाने यात बराच पुढाकार घेतला. एकूण ११ व्याख्याने झाली आणि १२ व्या व्याख्यानाच्या दिवशी सहभागी सदस्यांचे भक्तामरावरील लेखवाचन आणि प्रशस्तिपत्रवितरण समारोह झाला.

प्रारंभीच्या व्याख्यानात डॉ. नलिनी जोशी यांनी भक्तामरस्तोत्राचा काळ, भाषा, कवी, महत्त्व आणि लोकप्रियता यांची रंजक माहिती दिली. त्यानंतर प्रत्येक व्याख्यानात ४-५ श्लोकातील शब्द, भाव, अलंकार, भक्ती आणि सौंदर्य यांचा श्रोत्यांना रसास्वाद घडवून दिला. प्रत्येक शब्दाचा ऊहापोह केला. श्लोकात निहित असलेल्या तात्त्विक संकल्पनांचे स्पष्टीकरण केले. प्रत्येक व्याख्यानास सरासरी ५० जिज्ञासूंची उपस्थिती असली तरी १२ पैकी ९ व्याख्यानांना जे उपस्थित असतील व जे शेवटच्या दिवशी छोटा निबंध स्वत: लिहून, वाचून दाखवतील अशांनाच प्रशस्तिपत्र देण्यात आले. एकूण जिज्ञासूंपैकी १० पुरुष व २० स्त्रिया यांनी प्रशस्तिपत्रे मिळवली.

वाचण्यात आलेल्या लघुनिबंधांपैकी काही विषय येथे देत आहे. विषयातील विविधतेची कल्पना त्यावरून आपण करू शकतो.

१. भक्तामरस्तोत्राच्या लोकप्रियतेची कारणे.

२. भक्तामरातील आठ भये : आधुनिक संदर्भात अर्थ.

३. भक्तामरात उल्लेखलेले पशु, पक्षी, जलचर - त्यांची वैशिष्ट्ये.

४. मानतुंगसूरींचे काव्यप्रभुत्व, शब्दसंपदा, अलंकारकौशल्य, उत्कट भाव.

५. भक्तामरातील पाच उत्कृष्ट उपमा.

६. तीर्थंकरांची आठ प्रतिहार्ये, चार प्रतिहार्यातील भावरम्यता.

७. तीर्थंकरमातांचा गौरव करणारा श्लोक.

८. आदिनाथांमध्ये कोणकोणत्या देवता निवास करतात ? कोणत्या अर्थाने ?

९. आदिनाथांचे दीपकापेक्षा श्रेष्ठत्व.

१०. आदिनाथांचे चंद्रापेक्षा श्रेष्ठत्व.

११. आदिनाथांचे सूर्यापेक्षा श्रेष्ठत्व.

१२. मानतुंग आचार्यांची विनयशीलता आणि आत्मविश्वास.

१३. भक्तामरस्तोत्राच्या रचनेमागची कथा.

१४. देवांपेक्षा वीतराग जिनांची श्रेष्ठता.

१५. जैन तत्त्वज्ञानात स्तवन, स्तुति, स्तोत्रांचे कथन.

१६. तीर्थंकरांच्या ३४ अतिशयांपैकी कशाकशाचे वर्णन या स्तोत्रात आहे ?

१७. भक्तामराच्या अंतिम श्लोकातील फलश्रुतीचे मुख्य दोन अर्थ.

१८. भक्तामराचा अर्थ का समजून घेतला पाहिजे ?

सर्व सहभागींनी विचारपूर्वक आपापल्या विषयाची निवड केली होती. २-

३ विषयांची पुनरावृत्ती झाली. कित्येकांनी असे निबंधवाचन प्रथमच केले. ३-४ जणांनी अतिशय शैलीदारपणे आणि अचूक शब्दात विषय मांडला. बौद्धिक आणि भावभक्तिमय आनंदाचा हा एकत्रित अनुभव खरोखरच आगळावेगळा होता. आनंदाच्या अशा अनेक ठेव्यांनी जैन साहित्याचा खजिना भरलेला आहे.

साहित्य आणि तत्त्वज्ञानाची अशी गोडी समाजाला लागली तर जैन अध्यासनाचे उद्दिष्टही हळूहळू पूर्ण होईल !!!

●●●

.४.

'जैनविद्या' के विविध आयाम

('महावीर जैन विद्यालय'-गर्ल्स होस्टेल, पुणे ४,
पर्युषण-पर्व-व्याख्यान, २७ ऑगस्ट २०११)

– डॉ. नलिनी जोशी

मेरे प्यारे जैन युवक-युवतियों,

आपके सामने, पर्युषणपर्व के शुभ अवसर पर, जैनविद्या याने जैनॉलॉजी के संदर्भ में कुछ विचार प्रस्तुत करने में मुझे अत्यधिक खुशी महसूस हो रही है । पूरे भारतवर्ष में एवं विदेश में भी, खासकर युवक-युवतियों में, भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की नयी चेतना जागृत हो उठी है, धधक उठी है । मा. अण्णा हजारेजी ने अहिंसा एवं सत्य का शांततामय मार्ग अपनाया है, जो कि महात्मा गांधीजी द्वारा दिखाये गये मार्ग की अगली कडी है । म. गांधीजी के जीवनचरित्रपर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनके मन में अहिंसामय सत्याग्रह के मार्ग की जो ज्योति जागी, उसकी चिनगारी उन्होंने जैन तत्त्वज्ञान से अभिभावित श्रीमद् राजचंद्रजी एवं अन्य आध्यात्मिक व्यक्तिमत्वों से प्राप्त की थी । जैन तत्त्वज्ञान में अनुस्यूत तत्त्वों का व्यापक समाजहित के लिए किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है, इसका यह जीता-जागता उदाहरण है । पिछले पच्चीस साल से जैन परंपरा का हृदय जाननेकी कोशिश कर रही हूँ । धार्मिक एवं सामाजिक जागरण के इस दुग्धशर्करासंजोग के अवसरपर जैनविद्या याने जैनॉलॉजी के विविध आयामोंपर यथाशक्ति प्रकाश डालनेका प्रयास करूँगी ।

आपको विदित है कि भारतवर्ष में उद्भूत प्राचीनतम विचारधाराओं में एक प्रमुख विचारधारा जैन परंपराने सुरक्षित रखी । समय-समयपर परिवर्तित और परिवर्धित की । समग्र भारतीय संस्कृति के अध्ययन की एक ज्ञानशाखा का पूरी दुनिया के नामचीन विश्वविद्यालयों में पिछले दस सालों से विशेष तौरपर अध्ययन जारी है । संख्या की दृष्टि से शोधकर्ता भले ही अल्प हो, पर मौलिकता की दृष्टि से ''भारतीय प्राच्यविद्या'' याने 'इंडॉलॉजी' के अभ्यास के नये नये मापदंड और नये नये आयाम दृग्गोचर हो रहे हैं । इंडॉलॉजी के अंतर्गत हिंदुइझम, जैनिझम और बुद्धिझम - तीनों का अंतर्भाव होता है । जैनिझम का अध्ययन 'जैनॉलॉजी' इस नाम के अंदर हो रहा है । ईस्वी के तीसरे सहस्रक के आरंभमें ही जैनॉलॉजी याने 'जैनविद्या' एक सशक्त, स्वतंत्र ज्ञानशाखा के तौरपर उभर रही है ।

समझो कि जैनविद्या एक कॅलिडोस्कोप की तरह है । रंगबिरंगे काँच के टुकडे, छह कोनोंवाली लोलक की रचनाके बीच में रखे हैं । जरा सा कोन बदला कि रचना बदली । छह अँगल्स तो कमसे कम हैं ही । इसके अलावा पॅटर्नस् - आकृतियाँ तो सैंकडों हैं, हजारों हैं, अनगिनत हैं ।

जैनविद्या की छह पहलुओं में पहला है उसका प्राचीन से अर्वाचीन काल तक का धाराप्रवाही प्रवास ! हम सब जानते हैं, सुनते हैं और कहते भी हैं कि जैन परंपरा अनादिकाल से चलती आयी है और हमारा विश्वास है कि यह परंपरा अनन्त काल तक नये नये रूपांतरणों के द्वारा चलती ही रहेगी । मतलब, जैनविद्या का प्रथम अंग है उसकी 'ऐतिहासिकता !' अगर ऐतिहासिकता की खोज में चले तो जैन दृष्टि से प्रथम समझ लेनी चाहिए 'कालचक्र' की संकल्पना । 'काल' चक्रवत् है । उसका हम आदि-मध्य-अन्त सुनिश्चित रूप में नहीं कह सकते । एक

कालचक्र के दो बडे भाग हैं – अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी । उस प्रत्येक के छह आरे, उनके नाम, छह आरों में सृष्टि का स्वरूप, मानव–तिर्यंचों का स्वरूप, २४ तीर्थंकरों का आविर्भाव, तिरसठ शलाकापुरुषों के नाम, जानकारी आदि सब 'ऐतिहासिकता' इस आयाम के अंदर समाविष्ट होता है ।

ऋषभदेव, अरिष्टनेमी, पार्श्वनाथ और भ.महावीर – इन चार तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता अबतक प्राय: सर्वमान्य हो चुकी है । ऋषभदेव या आदिनाथ संपूर्ण मानवजाति को सुसंस्कृत बनानेवाले आदर्श व्यक्तियों में शायद पहले ही थे । उनका चरित्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, भागवतपुराण आदि हिंदु या वैदिक ग्रंथों में भी अंकित किया हुआ है । सुप्रसिद्ध वाल्मीकि रामायण के काल में जैन इतिहास के मुताबिक बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का शासनकाल था । बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमी स्पष्टत: महाभारत के समकालीन तीर्थंकर थे, जो वासुदेव कृष्ण के बडे चचेरे भाई थे । तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भ. महावीर के पहले २५० साल हुए थे । बौद्ध साहित्य में पार्श्वनाथ के अनुयायियों का जिक्र बार बार किया हुआ है । आज का जैन धर्म भ. महावीर की देन है । उनका सुनिश्चित काल है – ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी । उपनिषद के अनेक ऋषि, भ. बुद्ध और भ. महावीर प्राय: समकालीन थे । वह युग अपूर्व विचारमंथन का युग था । उस काल के अनेकविध विचारों की गूँज हमें प्राचीन आगमसाहित्य में मिलती है ।

इस 'ऐतिहासिकता' आयाम का उपांग है जैन संप्रदाय–उपसंप्रदायों का इतिहास, प्रचार, प्रसार और उनमें साम्यभेद । श्वेताम्बर–दिगम्बर, मूर्तिपूजक, मंदिरमार्गी, स्थानकवासी, तेरापंथी, तारणपंथी, सोलहपंथी, बीसपंथी, साडेसोलहपंथी, दादागुरुमार्गी, कांजीस्वामीमार्गी, अनेक जैन गण, गच्छ और उन सबका इतिहास,

अभ्यासकों ने खूब अंकित कर रखा है । इसके अलावा भारतवर्ष में जैनधर्म का प्रसार किस प्रकार से, किस क्रम से हुआ–यह भी एक खास विषय है । हिंदु और बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म का भारत के बाहर प्रसार न होने के कारणों की मीमांसा–चिकित्सा भी खूब की गयी है । भारत में जो प्रमुख राजवंश हुए जैसे कि मगध, नन्द, मौर्य, गुप्त, कलिंग, गंग, कदंब, सातवाहन – इन राजवंशों में से किन्हों ने जैन धर्म की पुष्टि की, किन्हों ने विरोधी रुख अपनाया, यह भी तो जैन इतिहास का ही एक अंग है । सम्राट अशोक के पौत्र सम्प्रति, कलिंग (उडिसा) के सम्राट खारवेल, गुजरात के राजा कुमारपाल एवं कर्नाटक के गंग राजवंश के अमात्य चामुण्डराय – इन चार राजवंशों का इतिहास जैन धर्म से आत्यंतिक निकटतासे जुडा हुआ है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जैन धर्म की ऐतिहासिकता की दृष्टि से खोज करना – अपने आप में एक स्वतंत्र ज्ञानशाखा ही हैं ।

अब चलते हैं सीढी के दूसरी पायदानपर, अथवा कहिए कि जैनविद्यारूपी विशाल प्रासाद के दूसरे दालन में । इस दालन में हम देख सकते हैं जैन तत्त्वज्ञान अर्थात् षड् द्रव्य और नौ तत्त्व । कौनसा भी जैन किताब खोलो, आपको बार बार देखने मिलेंगे यही षड् द्रव्य एवं नौ तत्त्व । पूरा विश्व छह द्रव्यों में बाँटा जा सकता है । यों कहिए कि षड् द्रव्यों के समूह को ही 'लोक' कहते हैं । ये तत्त्व हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । जीव है चेतनतत्त्व (consciousness) । पुद्गल है matter, जो अणु–परमाणु (atoms, molecules) के स्वरूप में है । धर्म–अधर्म तत्त्व गति और स्थिति के – याने motion और rest के सहायक तत्त्व हैं । आधुनिक विज्ञान में हम कह सकते हैं कि यह गुरुत्वाकर्षण का नियम

(law of gravitation) है और वस्तुमान - ऊर्जा के स्थित्यंतरों के प्रत्यायक तत्त्व भी इनमें निहित है । आकाश और काल - space और time हैं । ये दो आधुनिक physics या भौतिक विज्ञान के विषय हैं । ये षड् द्रव्य सत्य हैं, तथ्य हैं realities हैं ।

जैन तत्त्वज्ञान के अनुसार 'जीव' और 'अजीव' के सतत संपर्क से कर्मों का नित्य 'आस्रव' होता रहता है । कर्मास्रव से बद्ध आत्मा प्रयत्नपूर्वक कर्मों के आगमन के द्वार रोक सकती है । यही है 'संवर' तत्त्व । पूर्वार्जित कर्मों का आंशिक एवं संपूर्ण क्षय याने 'निर्जरा' - तपस्या के द्वारा होती है । आत्मा की कर्ममुक्त सहज स्थिति 'मोक्ष' है । 'पुण्य' और 'पाप' दोनों का समावेश 'आस्रव' या 'बंध' में हो सकता है । ये सात या नौ तत्त्व नैतिक तत्त्व (Ethical Tenets) हैं । उसे metaphysics कहा जाता है ।

जैन तत्त्वज्ञान में अनेकानेक जैन आचार्यों ने सदियोंतक विचारमंथन करके अष्टकर्मोंका सिद्धान्त खूब पल्लवित, पुष्पित किया है । न्यायदर्शन की परिभाषा अपनाकर नयवाद-स्याद्वाद-अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठा की है । तत्त्वार्थसूत्र के पहले अध्याय में की गयी सूक्ष्म ज्ञानमीमांसा (Epistemology) इस तत्त्वज्ञान की आधारशिला है ।

जैनविद्यारूपी प्रासाद का तीसरा दालन है जैन आचारसंहिता । उसमें प्रथम स्थानपर है रत्नत्रयरूप याने सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त मोक्षमार्ग । साधु के लिए पंचमहाव्रत एवं श्रावक के लिए अणुव्रत-गुणव्रत-शिक्षाव्रत अथवा ग्यारह प्रतिमाओंपर आधारित मार्ग बताया है । इन सबका मूल आधार है 'अहिंसा' । आहार-विहार-वर्तन के नियम, उनके अतिचार तथा प्रायश्चित्तोंका खूब वर्णन

किया है । साधु और श्रावक के लिए षट् आवश्यकों के रूप में दैनंदिन और यावज्जीवन आचार के मार्गदर्शक तत्त्व विस्तार से बताए हैं ।

मंदिरनिर्माण, पूजा-प्रतिष्ठा, विविध उत्सव, दीक्षाविधि, व्रत-विधान, आहार-प्रत्याख्यान, उपवास, स्वाध्याय, प्राणिरक्षा, दानधर्म आदि सब जैन आचार के प्रत्यक्ष-समक्ष रूप हैं । विविध कारणों से इस आचार में सम्मीलित क्रियाकांड और आडंबरों की समीचीन समीक्षा एवं आलोचना भी जैन और जैनेतरों से की जाती है । विशेषत: जैनियों की युवा पिढी बाह्याचारों से ऊपर उठकर मूलतक पहुँचने का प्रयास कर रही है । खेद की बात यह है कि बाह्याचारों से परे होकर जैन जीवनशैलीपर आधारित उदारमतवादी, चारित्र्यसंपन्न, ज्ञानी एवं सामाजिक भान रखनेवाले कुशल आदर्श नेतृत्व की प्रतीक्षा जैन युवा पिढी को है, जो उन्हें आसपास नहीं दिखाई दे रही है । सारांश, ''जैन तत्त्वज्ञान के मूलाधार और प्रत्यक्ष आचार-व्यवहार'' - यह विषय जैनविद्या का एक बहुचर्चित विषय है । जैन युवक-युवतियाँ जैन परंपरा की भूतकालीन गरिमा से ऊपर उठकर समकालीन प्रस्तुतता पर जादा बल देती है, जो कि एक सुचिह्न है ।

जैनविद्या का चौथा गरिमापूर्ण आयाम है 'जैन साहित्य' (literature) । जैन प्राचीन परंपरा की खासकर भ. महावीर की भाषिक प्रेरणा अतीव मूल्यवान् है । जैन धर्म के प्राचीन उपदेश कभी भी संस्कृत में आविष्कृत नहीं हुए । जैन धर्म के अभिभावकों ने सदियों से जनभाषा-लोकभाषा-बोलचाल की भाषा याने प्राकृत ही अपनायी । संख्या की दृष्टि से अत्यल्प होनेपर भी पाँच विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखकर वैविध्यपूर्ण साहित्यसागर का सर्जन किया । महावीरवाणी अर्धमागधी में प्रकट हुई । तदनंतर दिगम्बरीयों ने 'शौरसेनी' नामक तत्कालीन प्रचलित भाषा

में लेखन किया । उत्तरवर्ती श्वेताम्बर आचार्यों ने 'जैन महाराष्ट्री' नामक भाषा में महाकाव्य, खंडकाव्य, चरित, कथाग्रंथ, उपदेशपर ग्रंथ लिखे । श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों ने मिलकर न्यायविषयक साहित्य एवं ललित साहित्य-अभिजात संस्कृत में प्रस्तुत किया । हालाकि उन्होंने संस्कृत को 'देववाणी' या 'गीर्वाणवाणी' का दर्जा नहीं दिया । संस्कृत गरिमा 'ज्ञानभाषा' तक सीमित रखी । दसवीं शताब्दी के आसपास जैनियों ने 'अपभ्रंश' भाषा में लिखा । यह गौरव की बात है कि आधुनिक कन्नड, गुजराती, राजस्थानी और हिंदी भाषा का पहला साहित्य जैन आचार्योंद्वारा लिखित है । आधुनिक काल में सभी के सभी भारतीय भाषाओं में एवं विश्व की प्रमुख भाषाओं में जैनविद्याविषयक लेखन-संशोधन चल रहा है । जर्मनी, फ्रान्स, इंग्लंड आदि देशों में जैन स्टडी सेंटर्स हैं । पिछले कई सालों से डेक्कन कॉलेज के 'अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ इंडियन स्टडिज्' के अंतर्गत प्राकृत की पढाई के लिए अमेरिकन विद्यार्थी आ रहे हैं ।

जैनियों के प्राकृत कथासाहित्य में प्रतिबिंबित जनमानस बहुत ही लुभावना और अनुपमेय है । जैन साहित्य की विशेषताएँ, बलस्थान एवं जैन साहित्य की मर्यादाएँ - दोनों विषयों की अनुसंधान के क्षेत्र में हमेशा चर्चा की जाती है ।

भारतीय संस्कृती का पाँचवा महत्त्वपूर्ण अंग है - 'विविध कलाओं का आविष्कार' । संख्या से अत्यल्प होने के बावजूद आर्थिक सुबत्ता और आंतरिक धर्मप्रेम के कारण जैनियों ने भारतीय कलाक्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान किया है । जैन साहित्य में उल्लिखित वास्तुप्रकार जैनियों के कलासक्ति के परिचायक हैं । जैन कलाओं के आविष्कार गुंफा, गुंफासमूह, मूर्तिनिर्माण, चित्रकला, पांडुलिपियाँ एवं मंदिरशिल्पों के स्वरूप में आज भी विश्व के सामने उपस्थित हैं । राजस्थान,

मारवाड, सौराष्ट्र और आबू के मंदिरसमूह केवल जैन कला के नहीं बल्कि अनुपमेय भारतीय कलाविष्कारों के उत्कृष्ट नमूने हैं ।

जैन परंपरा की निवृत्तिगामिता एवं जीवनविन्मुखता का जिक्र जब जब किया जाता है, तब तब उसका प्रतिवाद करने के लिए जैन कलाओं के आविष्कार सामने उभरकर आते हैं । एक ओर आध्यात्मिक उन्नति, एकांतसाधना, दीक्षा, वैराग्य, संयम, तप और दूसरी ओर परम तत्त्व का साक्षात्कार करानेवाले सौंदर्यपूर्ण कलाविष्कार ! सच में जैन परंपरा सत्यं-शिवं-सुंदरम् की समन्वित आराधना है । 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र'-मोक्षमार्ग का रत्नत्रय है तो 'सत्य-शिव-सुन्दर' जैन जीवनशैली का रत्नत्रय है । ये सब कलाविष्कार एक दृष्टि से भारतीयता के परिचायक हैं । तथापि अपनी पृथगात्मकता भी कायम रखते हैं ।

जैनविद्या का छठा पहलू है-''तौलनिक अध्ययन'' । हमारी राष्ट्रीय प्रतिज्ञा 'विविधता में एकता' को सशक्त रूप से प्रकट करती है । कम से कम पाँच हजार सालों से भारतवर्ष में अनेक विचारधाराएँ कार्यरत हैं । आस्तिक, नास्तिक, क्रियावादी, अक्रियावादी, भौतिकवादी, सुखवादी, ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी, बुद्धिप्रधान, कर्मप्रधान, भक्तिप्रधान - सैंकडों दृष्टिकोण प्रकट करनेवाले विचारवंत यहाँ उपस्थित हैं । उनमें कभी संघर्ष है तो कभी समन्वय । लेकिन इतिहास के प्रदीर्घ प्रवाह में शायद ही कभी हिंसा का प्रादुर्भाव यहाँ हुआ है । वैदिक, हिंदु, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम, ख्रिश्चन इन सब धर्मियों से जैन परंपरा का पाला पडा है। दूसरों के आचार-विचारों से कभी जैन प्रभावित हुए हैं तो कभी दूसरों को अपने विचारों से प्रभावित किया है । सभी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का हेतुकारणसहित लेखाजोखा प्रस्तुत करना जैनविद्या का आखरी पहलू है ।

पिछली सदी में जैनविद्या के अनुसंधान का स्वर कुछ इस प्रकार था – ''जैन परंपरा हमेशा हिंदुओं से प्रभावित है । इस्लाम और ख्रिश्चनों से भी उसने तडजोड की है । हमेशा सिर झुकाया है ।'' लेकिन मेरे प्यारे युवक-युवतियों, ईस्वी के इस तीसरे सहस्रक में जैनविद्या के अनुसंधान का रुख बदला हुआ है । अहिंसा, संयम, परिवर्तन, समन्वय, दान, शाकाहार, प्राणिरक्षा, शांततामय उल्लासपूर्ण सहजीवन, क्षमापना – आदि अनेक मुद्दे सामने आ रहे हैं, जो जैन परंपरा का हृदय है, सारसर्वस्व है, जो हमें बरकरार रखकर अगली पीढीतक पहुँचाना है ।

जय जिनेन्द्र ! जय हिन्द !

●●●

.५.

श्रीकृष्ण : एक पराक्रमी, मुत्सद्दी तत्त्वज्ञ

व्याख्यान : डॉ. सदानंद मोरे

संकलन : डॉ. नलिनी जोशी

पुणे विद्यापीठातील जैन अध्यासनातर्फे गेली ४ वर्षे विविध उपक्रम राबवले जात आहेत. सन्मति-तीर्थच्या संपूर्ण सहयोगामुळे ते यशस्वी होत आहेत. अशा विविधांगी उपक्रमांपैकी एक म्हणजे – 'अभ्यासपूर्ण व्याख्यानांचे आयोजन'. श्रीकृष्णाच्या व्यक्तिमत्वाचा सर्वंकष अभ्यास असणारे डॉ. सदानंद मोरे यांचे उपरोक्त विषयावरील व्याख्यान, पूर्ण कायापालट झालेल्या फिरोदिया होस्टेलवरील सुसज्ज ऑडिटोरियममध्ये आयोजित करण्यात आले होते. अत्यंत जिज्ञासू असे सुमारे १२० श्रोते व्याख्यानास उपस्थित होते. आरंभी स्वागत-परिचयानंतर त्यांच्या हस्ते 'जैन तत्त्वज्ञान', 'जैनविद्येचे विविध आयाम' आणि 'अनोळखी गोष्टी (भाग ६)' – या तीन पुस्तकांचे प्रकाशन करण्यात आले. त्यानंतर सर्व औपचारिक (बोअर ?) गोष्टींना रजा देऊन डॉ. मोरे यांचे दीड तासाचे प्रदीर्घ, अभ्यासपूर्ण व्याख्यान झाले. त्यातील काही महत्त्वपूर्ण मुद्यांचे शब्दांकन येथे देत आहोत.

भारतीय संस्कृतीत श्रीकृष्णाचे स्थान काही आगळेवेगळे आहे. ते अत्यंत संमिश्र, संकीर्ण, जटिल आहे. 'कृष्णकारस्थान', 'कृष्णकृत्य' अशा आक्षेपार्ह पदावली त्याच्या संदर्भात वापरल्या जातात. ते काहीही असो, 'आकर्षण के केन्द्र कृष्ण है' हे निश्चित. चित्र, शिल्प, गायन, वादन – या कलांमधून कृष्णाला

वगळून पहा ! मग सगळेच नीरस, सुने सुने वाटू लागेल. 'माखनचोर' बालकृष्ण, राधा-गोपिका-वल्लभ किशोर, दुष्ट निर्दालक युवक, द्वारका वसविणारा प्रौढ, महाभारतातीलअर्जुन-सारथी आणि अखेर द्वारकाविनाश जड अंत:करणाने पहाणारा वृद्ध - अशी अक्षरश: हजारो रूपे त्या नटरंगी श्रीकृष्णाची आहेत. गोकुळ, वंदावन-मथुरा-द्वारका असा त्याच्या आयुष्याचा प्रवास आहे. तो-तो आयुष्यकाळ त्याने समरसून घालवला परंतु पुन्हा पुन्हा मागे वळून भूतकाळात रमला नाही.

हिंदू पुराणांनी त्याला आठवा अवतार मानला. जैनांनी त्या ६३ शलाकापुरुषात 'वासुदेव' (अथवा 'नारायण') हे पद दिले. पूतनावध, कंसवध, जरासंधवध इ. कृत्यांची शिक्षा म्हणून जैन पुराणांनी त्याला नरकात पाठविले. तरीही त्यांच्या आंतरिक निरासक्तीचे आणि विलक्षण प्रभावाचे मर्म ओळखून त्याच्या 'भावी तीर्थंकरत्वा'चाही दिलासा दिला. अर्धमागधी आगमांमध्ये कृष्णकथांना स्थान दिले. बौद्धांनीही कृष्णाला गौतमबुद्धाच्या जातककथांशी जोडून घेतले. बौद्धांच्या मते, गौतम बुद्ध 'घटपंडिता'च्या जन्मात असताना, श्रीकृष्ण त्याचे बंधू होते. बौद्धांच्या तुलनेत जैन साहित्यात कृष्णकथा अधिक येतात कारण २२ वे तीर्थंकर अरिष्टनेमींशी असलेले कृष्णाचे नाते ! ते सर्व आपल्याला माहीत असल्याने पुनरावृत्ती नकोच !

काश्मिरी कवी 'क्षेमेन्द्र' याने कृष्णचरित्राच्या अंतरंगाचा ठाव घेऊन त्याच्या वृत्ती-प्रवृत्तींमागची सूत्रे शोधण्याचा प्रयत्न केला. प्रथम सूत्र आहे त्याची 'अमला प्रज्ञा' (स्व-पर-हितकारक शुद्ध बुद्धी) आणि दुसरे सूत्र आहे - 'सूक्ष्म नीति:' - म्हणजे धर्म-अधर्माच्या सीमारेषा ओळखून, प्रसंगी अपवादात्मक मार्गाचा अवलंब धर्मसंस्थापनेसाठी करण्याचा त्याचा मुत्सद्दीपणा आणि राजनीतीतले कौशल्य !

हिंदूंनी जी 'प्रस्थानत्रयी' मानली आहे ती आहे - उपनिषदे, ब्रह्मसूत्रे आणि गीता. त्यापैकी उपनिषदे आणि ब्रह्मसूत्रे, जैनांच्या भाषेत 'निश्चयनयावर', अर्थात् आत्मज्ञानावर आधारित ग्रंथ आहेत. 'गीता' सर्वस्वी वेगळी आहे. ती व्यवहारनयावर आधारित आहे. त्यात रोजच्या जीवनातील कर्तव्यकर्मांना आणि तरीही 'निष्काम'तेला महत्त्व दिले आहे. गीतेत तत्त्वज्ञान आहे आणि चोख व्यवहारही आहे. महाभारतातील घटनाक्रम आणि कृष्ण-पांडव-कौरव-संबंध - यांना सोडून गीतेचा अभ्यास करताच येत नाही. गीतेतला उपदेश अर्जुनाला दिलेला 'फुकटचा सल्ला' नसून, कृष्ण जसा जगला तसाच उपदेश त्याने अर्जुनाला दिला.

कृष्णाच्या जीवनाची अटळ शोकांतिका म्हणजे त्याला आयुष्यभर प्राय: स्वकीयांशीच लढावे लागले. त्याचे

शत्रू म्हणजे त्याचीच आत्ते-मामे-मावसभावंडे होती. मुत्सद्दीपणाबरोबरच पराक्रम त्याच्या नसानसात भरलेला होता. त्यामुळे त्याने (महाभारताचे अंतिम युद्ध सोडता) अनेक युद्धात भाग घेतला, नेतृत्व केले.

जैनांनी ज्याला 'प्रतिवासुदेव' मानले तो आहे 'जरासंध'. मगधाचा बलाढ्य सम्राट. कृष्णाचा आत्तेभाऊ. अंग-वंग-कलिंगातील गणतंत्र (त्याकाळची लोकशाही) पद्धत सोडून त्याला साम्राज्यशाही प्रस्थापित करायची होती. ८६ राजांना बंदिवान करून अखेर 'नरमेधा'त त्यांचा बळी द्यायचा होता. भारतभरातील अनेक राजे त्याच्या दडपशाहीत सामील होते. जरासंधाचा अंमल सर्वत्र चालू झाला तर होणारा अनर्थ ध्यानी घेऊन, या मुत्सद्दी कृष्णाने एक-एक करून त्याच्या पाठीराख्यांना शरण आणले. अखेरीस भीमाच्या सहाय्याने विलक्षण कट करून त्याचा वध केला. कृष्ण स्वत: कधीही कुठलाही 'राजा' झाला नाही. मगधाचे राज्य त्याने जरासंधाच्या

मुलास दिले. कंसवधानंतर त्याचे पिता 'उग्रसेन' याला 'राजा' केले. कृष्ण हा 'द्वारकेचा राणा' म्हटला जातो तो आलंकारिक अर्थाने. द्वारकेचा अभिषिक्त राजा बलरामच होता.

यादवांची राजधानी मथुरेहून 'द्वारका' या बंदरात हलविण्याचा सुज्ञ निर्णय कृष्णाचाच होता. त्यामुळे समुद्रमार्गे व्यापार प्रचंड वाढला. दीर्घकाळ द्वारका समृद्धीच्या अत्युच्च शिखरावर विराजमान राहिली. अफाट समृद्धीमुळे व्यसनासक्त झालेल्या आपल्याच नातू-पणतू इत्यादी जिवलगांना आरंभी त्याने वाचविण्याचा प्रयत्न केला. परंतु नंतर ते एकमेकांशी लढून मृत्युमुखी पडले. हे जीवघेणे सत्य शांतपणे पचवायला त्याला उपयोगी पडला तो त्याच्यातील तत्त्वचिंतक. महाभारत आणि गीतेत त्याला 'योगेश्वर' ही संज्ञा दिलेली दिसते.

एवं च काय ? 'अमला प्रज्ञा' आणि 'सूक्ष्मा नीति' यांनी युक्त अशा श्रीकृष्णाने एक पराक्रमीवीर, मुत्सद्दी राजकारणी आणि गंभीर तत्त्वचिंतक - अशी आपली मोहोर भारतीय जनमानसावर उमटविली आणि पुढेही दीर्घकाळ त्याचे व्यक्तिमत्व आपल्यावर अधिराज्य गाजवणार आहे !!!

●●●

.६.

सन्मति-तीर्थ के परीक्षा परिणाम

हार्दिक अभिनंदन !!!

(अ) जैनॉलॉजी परीक्षा परिणाम (२०११-२०१२)

क्रमांक	नाम	केंद्र
	जैनॉलॉजी प्रथम वर्ष (सर्टिफिकेट)	
प्रथम	गांधी लीना भारत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
द्वितीय	गुगळे अपर्णा संतोष	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
तृतीय	राठोड श्वेता विशाल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
	जैनॉलॉजी द्वितीय वर्ष (कोविद)	
प्रथम	बाफना नीता सुरेश	श्रीरामपूर
द्वितीय	कुवाड सुनीता नितीन	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
	जैनॉलॉजी तृतीय वर्ष (विशारद I)	
प्रथम	कुंकुलोळ सोनल हेमंत	श्रीरामपूर
द्वितीय	दुगड कविता अतुल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
तृतीय	सोळंकी दर्शना राहुल	शिवाजीनगर, पुणे
	जैनॉलॉजी चतुर्थ वर्ष (विशारद II)	
प्रथम	भंडारी सुमतिलाल चंदनमल	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
द्वितीय	राका ज्योति धरमचंद	लोणी
तृतीय	मुथा रसिक घेवरचंद	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
तृतीय	मुथा स्मिता राहुल	श्रीरामपूर

जैनॉलॉजी पंचम वर्ष (विशारद III)

प्रथम	शहा पल्लवी हितेंद्र	अरिहंत सोसायटी, पुणे
द्वितीय	तुरकिया बेला मनोज	अरिहंत सोसायटी, पुणे

जैनविद्या–प्रगत–पाठ्यक्रम : जैनतत्त्वप्रकाश I

A + श्रेणि	रुणवाल पूनम आनंद	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	रुणवाल काश्मिरा शीतल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	शिंगवी रत्नमाला रसिक	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	छाजेड श्रद्धा	औरंगाबाद
A + श्रेणि	खिवंसरा निलीमा दीपक	औरंगाबाद

जैनविद्या–प्रगत–पाठ्यक्रम : जैनतत्त्वप्रकाश II

A + श्रेणि	चौपडा वैशाली सोनल	अहमदनगर

जैनविद्या–प्रगत–पाठ्यक्रम : तत्त्वार्थसूत्र I

A + श्रेणि	गुंदेचा शोभा अतुल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	जैन मंजु नरपत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	बाफना विमल प्रकाश	औरंगाबाद
A + श्रेणि	देवडा दर्शना योगेश	औरंगाबाद
A + श्रेणि	गुगळे कविता मुकेश	औरंगाबाद
A + श्रेणि	जैन मितल निलेश	औरंगाबाद
A + श्रेणि	जैन प्रीति अजित	औरंगाबाद
A + श्रेणि	संघवी पूनम रूपेश	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	चोरडिया आशा मुकेश	लोणी

जैनविद्या–प्रगत–पाठ्यक्रम : तत्त्वार्थसूत्र II

A + श्रेणि	शहा स्मिता अतिवीर	भवानी पेठ, पुणे

आगम सीरिज : आचारांग I

A + श्रेणि	छेडा कल्पना खुशाल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	ओसवाल नेहा प्रदीप	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

आगम सीरिज : आचारांग II

A + श्रेणि	गांधी हेमलता नवनीत	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	गांधी ज्योति नवनीत	लोणी

आगम सीरिज : सूत्रकृतांग I

A + श्रेणि	भंडारी कुमुदिनी रमेश	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
A + श्रेणि	भंडारी सुमतिलाल चंदनमल	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
A + श्रेणि	मुनोत संगीता संजय	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
A + श्रेणि	मुथा ज्योत्स्ना नरेंद्र	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
A + श्रेणि	मुथा कल्पना अनिल	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
A + श्रेणि	समदडिया चंदा विजय	फिरोदिया होस्टेल, पुणे

आगम सीरिज : सूत्रकृतांग II

A + श्रेणि	कटारिया राखी रूपेश	औरंगाबाद
A + श्रेणि	मुथा विजया विजय	श्रीरामपूर

आगम सीरिज : स्थानांग

A + श्रेणि	चोरडिया सीमा विलास	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	मेहता अर्चना विनोद	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	कटारिया प्रतिभा राजेंद्र	दौंड

आगम सीरिज : समवायांग

A + श्रेणि	लोढा सविता प्रवीण	औरंगाबाद

जैनविद्या–प्रगत–पाठ्यक्रम : गीता

A + श्रेणि	ओसवाल नेहा प्रदीप	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

जैनॉलॉजी–परिचय (I)

A + श्रेणि	गटागट प्रीति अभिजीत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	जैन अनुपमा समीर	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	पगारिया प्रिया नीलेश	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	ओसवाल बिजल दिनेश	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	भंडारी शीतल उमेश	चिंचवड

जैनॉलॉजी–परिचय (II)

A + श्रेणि	चंगेडिया सोनल सुमीत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	बोकरिया सारिका प्रदीप	महावीर प्रतिष्ठान, पुणे
A + श्रेणि	बोरा सोनाली पारस	मुंबई
A + श्रेणि	बोथरा तनय नरेंद्र	बिबवेवाडी, पुणे

जैनॉलॉजी–परिचय (III)

A + श्रेणि	मेहता निधी विनोद	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	कोठारी नयना दिनेश	कल्याण
A + श्रेणि	धोका निलम दिनेश	महावीर प्रतिष्ठान, पुणे
A + श्रेणि	शिंगवी संगीता रविंद्र	महावीर प्रतिष्ठान, पुणे
A + श्रेणि	सरनोत अपूर्वा राजेंद्र	दौंड
A + श्रेणि	कटारिया वर्षा रसिक	अहमदनगर
A + श्रेणि	मुथियान जयश्री अतुल	अहमदनगर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–प्रथमा

A + श्रेणि	बोरा सम्यक नितीन	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	कोठारी स्मिता अमित	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	संचेती निधी जयेश	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	टाटिया सिद्धम प्रशांत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	कुवाड सारा गौरव	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	बलाई अर्पित राहुल	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	बोकरिया प्रजय विवेक	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	ओसवाल प्रथम दिनेश	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	राठोड नम्रता राजकुमार	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	राठोड तनिशा अरविंद	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	लुणावत ऋषभ मनीष	शिवाजीनगर, पुणे
A + श्रेणि	संचेती यश संजय	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	मुथा कुणाल सचिन	कल्याण
A + श्रेणि	भंडारी आदित्य अमृत	दौंड
A + श्रेणि	गुगळे तनिष्का नीलेश	अहमदनगर
A + श्रेणि	संचेती सम्यक नीलेश	अहमदनगर
A + श्रेणि	शेटिया समृद्धी विशाल	अहमदनगर
A + श्रेणि	भंडारी हर्षल नेमीचंद	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	भंडारी खुशी पंकज	श्रीरामपूर

A + श्रेणि	भंडारी नम्रता नेमीचंद	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	भंडारी तुषार नेमीचंद	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	बोकडिया खुशबु किशोर	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	चुत्तर अरिहंत संदीप	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	दुगड मोक्षदा दीपक	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	गांधी साक्षी नलिन	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी प्रतिक्षा ललित	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	लुंकड दर्शन संतोष	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	लुंकड समृद्धी सागर	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	लुंकड सिद्धी राजकुमार	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	गांधी कोमल प्रवीण	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी अक्षता राहुल	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी आयुष आनंद	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी मानस सचिन	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी मंजुश्री सुवालाल	श्रीरामपूर
A + श्रेणि	कोठारी युवराज राहुल	श्रीरामपूर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–द्वितीया

A + श्रेणि	बोरा पूर्वा नितीन	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	गांधी जिनीता रविकिरण	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	कासवा निधी पारस	अहमदनगर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–तृतीया

A +श्रेणि	चोरडिया युक्ता हर्षद	शिवाजीनगर, पुणे
A +श्रेणि	गोठी तिथी अनुपम	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	जैन श्रेयांस राकेश	मुंबई
A + श्रेणि	जैन विभा दीपेश	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	गुंदेचा प्रज्ञा अमृत	दौंड
A + श्रेणि	बोरा महावीर विलास	अहमदनगर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–चतुर्थी

A + श्रेणि	भुरट ईशान मनोज	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	हिरण पूर्वा प्रवीण	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	शेटिया जूही संदीप	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	सिरोया मानव गिरीश	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	सिरोया पूजा विशाल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	बोरा नेहा संतोष	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	खाटेर अनुष्का आकाश	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A + श्रेणि	नहार ईशिका सतीश	कल्याण
A + श्रेणि	भळगट अमेय महेश	अहमदनगर
A + श्रेणि	भळगट प्रज्ञा राहुल	अहमदनगर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–पंचमी

A + श्रेणि	गोठी लक्ष अनुपम	बिबवेवाडी, पुणे
A + श्रेणि	सरनोत पूर्वेश राजेंद्र	दौंड
A + श्रेणि	बोरा प्रेम श्रीकांत	अहमदनगर

जैनॉलॉजी–प्रवेश–प्रथमा (लेखी)

A + श्रेणि	नहार मनीषा हेमंत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

जैनॉलॉजी–प्रवेश–द्वितीया (लेखी)

A + श्रेणि	बोथरा ज्योति धर्मेंद्र	सुखसागरनगर, पुणे
A + श्रेणि	लोढा सविता महावीर	सुखसागरनगर, पुणे

●●●

(ब) प्राकृत परीक्षा परिणाम (२०११–२०१२)

प्राकृत प्रथम वर्ष (सर्टिफिकेट)

प्रथम	गुगळे अपर्णा संतोष	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
द्वितीय	गांधी लीना भारत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
तृतीय	राठोड श्वेता विशाल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

प्राकृत द्वितीय वर्ष (ज्युनियर डिप्लोमा)

प्रथम	कुवाड सुनीता नितीन	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
द्वितीय	चोरडिया प्रीति हर्षद	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
तृतीय	शहा पल्लवी हितेंद्र	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

प्राकृत तृतीय वर्ष (सीनियर डिप्लोमा I)

प्रथम	दुगड कविता अतुल	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

प्राकृत पंचम वर्ष (सीनियर डिप्लोमा III)

प्रथम	देसर्डा मोनिका अभिजीत	आदिनाथ सोसायटी, पुणे

.७.
सन्मति–तीर्थ के शिक्षक (ज्येष्ठतानुसार) एवं अध्यापन केंद्र

अ) जैनॉलॉजी एवं प्राकृत के शिक्षक

१.	डॉ. नलिनी जोशी	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
२.	सौ. सज्जनबाई बोथरा	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
३.	सौ. जया भंडारी	दौंड, बारामती, भिगवण
४.	सौ. आशा कांकरिया	येरवडा, पुणे
५.	सौ. शोभा काठेड	औरंगाबाद
६.	सौ. कांताबाई दुगड	श्रीरामपुर, राहुरी, कोल्हार
७.	डॉ. अनीता बोथरा	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
८.	सौ. शोभा लुंकड	श्रीरामपूर
९.	सौ. विजया मुथा	श्रीरामपूर
१०.	सौ. विमला बाफना	औरंगाबाद
११.	सौ. प्रतिमा शहा	पुणे
१२.	डॉ. अर्चना मेहता	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
१३.	सौ. प्रतिभा ललवाणी	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
१४.	सौ. कमल लुंकड	सॅलिसबरी पार्क, पुणे
१५.	सौ. हंसा नहार	शिवाजीनगर, पुणे

ब) बच्चों को पढानेवाले शिक्षक (अंग्रेजी अकारानुक्रम से)

क्र.	नाम	केन्द्र
१.	श्रीमती बागमार चंद्रकला	नारायण पेठ
२.	सौ. बाठिया प्रेमा अमोल	श्रीरामपूर
३.	सौ. भंडारी जया	दौंड
४.	डॉ. सौ. बोथरा अनीता	आदिनाथ सोसायटी
५.	सौ. बोथरा संगीता	बिबवेवाडी
६.	सौ. चंगेडिया पल्लवी	अहमदनगर
७.	सौ. चोरडिया हेमा	राज टेरेस
८.	सौ. दुगड सीमा दीपक	श्रीरामपूर
९.	सौ. देसडला संगीता	येरवडा
१०.	सौ. गांधी कांता	पुणे
११.	सौ. कटारिया प्रतिभा	अहमदनगर
१२.	सौ. कर्नावट सविता	बिबवेवाडी
१३.	सौ. कांकरिया आशा	येरवडा, पुणे
१४.	सौ. खाबिया अनीता हेमंत	श्रीरामपूर
१५.	सौ. कोठारी चंचला	सुखसागरनगर
१६.	सौ. कोठारी मेघा	चिंचवड, पुणे
१७.	सौ. कोठारी आकांक्षा विशाल	श्रीरामपूर
१८.	सौ. कोठारी लीना राहुल	श्रीरामपूर

१९.	कु. ललवाणी ज्योति	बिबवेवाडी
२०.	सौ. ललवाणी प्रतिभा	आदिनाथ सोसायटी
२१.	सौ. लुंकड कमला	सॅलिसबरी पार्क
२२.	श्रीमती मुथा ज्योत्स्ना	कल्याण सोसायटी
२३.	सौ. मुथा स्मिता	चिंचवड
२४.	सौ. नहार हंसा	शिवाजीनगर, पुणे
२५.	सौ. समदडिया चंदा	बिबवेवाडी
२६.	सौ. संघवी कांता प्रमोद	पुणे
२७.	सौ. संघवी सुषमा संतोष	श्रीरामपूर
२८.	सौ. सरनोत जयश्री	पुणे
२९.	सौ. शिंगवी पुष्पा	बिबवेवाडी
३०.	सौ. श्रीश्रीमाळ ब्रिजबाला	पुणे